राजा लक्ष्मणसिंह अनुवादित

मेघदूत

——

श्यामसुन्दरदास बी० ए० संपादित

———

१९३५
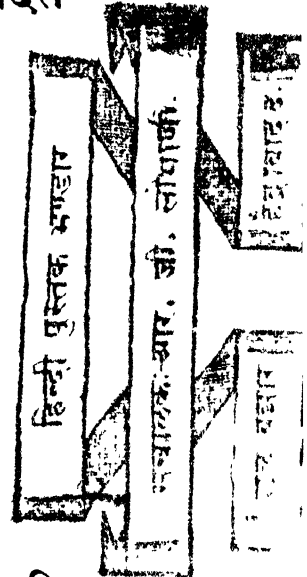
इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित

निवेदन

राजा लक्ष्मणसिंह का जन्म ९ अक्टूबर सन् १८२६ को आगरे में हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में इनका विद्यारम्भ कराया गया और ८ वर्ष तक ये घर पर संस्कृत, हिन्दी और फ़ारसी पढ़ते रहे। यज्ञोपवीत संस्कार हो चुकने पर १३ वर्ष की अवस्था में ये स्कूल में पढ़ने लगे और २० वर्ष की अवस्था में इन्होंने उस समय की सबसे ऊँची परीक्षा में उत्तीर्ण हो कालिज की पढ़ाई समाप्त की। सन् १८५० ई० में ये अनुवादक के पद पर नौकर हुए। पाँच ही वर्ष में ये तहसील-दार नियत हुए। यहाँ इन्होंने इस योग्यता से काम किया कि दो ही वर्षों में ये डिप्टी कलक्टर बना दिये गये। इस पद पर ये निरंतर उन्नति करते गये और अंत में सन् १८८८ में ४००) रु० मासिक की पेंशन लेकर अपने घर आगरे में रहने लगे। इनका देहांत आगरे ही में १४ जुलाई सन् १८९६ को हुआ।

सन् १८५७ के बलवे के समय इन्होंने गवर्नमेंट की बड़ी सहायता की थी। उसके उपलक्ष में इन्हें आगरे के पास ही एक इलाक़ा माफ़ी मिला और २०००) की ख़िलअत दी गई तथा सन् १८७७ के दिल्ली-दर्बार में राजा की उपाधि अर्पित हुई।

सबसे पहले सन् १८६१ में इन्होंने शकुंतला नाटक का हिन्दी गद्य में अनुवाद किया। इस अनुवाद की बड़ी प्रशंसा हुई, यहाँ तक कि इँगलैंड में इसका एक संस्करण अँगरेजी में टीका-टिप्पणी सहित छपा जो अब तक प्राप्य है। पीछे सन् १८८९ में राजा लक्ष्मणसिंह ने इस नाटक का दूसरा संस्करण किया जिसमें गद्य के स्थान में गद्य और पद्य के स्थान में पद्य में अनुवाद हुआ। यह अनुवाद भी बहुत अच्छा हुआ। सच बात तो यह है कि राजा साहब ने इस नाटक के अनुवाद में जैसी सुन्दर, रसीली और सीधी भाषा का प्रयोग किया है वैसी आज तक किसी और की लेखनी से नहीं निकली।

सन् १८७८ में राजा साहब ने रघुवंश का अनुवाद हिन्दी गद्य में किया। यह अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

तीसरा ग्रंथ राजा साहब का मेघदूत का पद्यात्मक अनुवाद है। सन् १८८२ में इस ग्रंथ के पूर्वार्द्ध का अनुवाद प्रकाशित हुआ और सन् १८८४ में संपूर्ण ग्रंथ का। इसके अनन्तर सन् १८९२ में इस ग्रंथ का तीसरा संस्करण राजा साहब ने छपवाया। अब यह ग्रंथ एक प्रकार से अप्राप्य है। कठिनता से कहीं कहीं इसकी प्रति देखने को मिल जाती है। यद्यपि मेघदूत के अनेक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं और बराबर प्रकाशित होते जाते हैं पर इस बात के कहने में कोई भी संकोच नहीं होता कि राजा साहब का अनुवाद बहुत ही अच्छा हुआ है और कई बातों में इसकी समता दूसरे अनुवाद नहीं कर सकते।

इन तीन ग्रंथों के अतिरिक्त राजा साहब ने "प्रजाहित" नाम का एक पत्र निकाला था और "दंड-सग्रह" नाम से ताजीरात हिन्द का हिन्दी में अनुवाद किया था। गवर्नमेंट के लिए इन्होंने कई अन्य ग्रंथों का अनुवाद भी किया है, परन्तु राजा साहब की उत्कृष्ट कृतियों में से केवल शकुंतला, रघुवंश और मेघदूत के अनुवाद हैं जो हिन्दी-संसार में उनकी कीर्ति को बनाए रखने के लिये अलम् हैं।

यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य को एक स्थिर रूप देकर उसको परिष्कृत और प्रसाद-गुण-सम्पन्न बनाया परन्तु लल्लूलाल के पीछे राजा लक्ष्मणसिंह ने ही उसके नए रूप को काट छाँट कर सुन्दर और मनोहर बनाया। हिन्दी गद्य को उत्कृष्ट रूप देने का यश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को प्राप्त है पर इसमें संदेह है कि यदि राजा लक्ष्मणसिंह अपनी लेखनी द्वारा उसे एक उत्तम रूप न दे गए होते तो भारतेन्दु जी को अपने उद्योग में इतनी सफलता प्राप्त न होती।

लखनऊ
१—१०—१७

श्यामसुन्दरदास

प्रथम भूमिका

उपमा अलंकार में कालिदास से बढ़कर अब तक कोई कवि भारत-वर्ष में नहीं हुआ और उनके ग्रंथों में मेघदूत भी इसी अलंकार की उत्कृष्टता के कारण सराहने योग्य गिना जाता है। इस छोटे से काव्य को पढ़कर पढ़नेवाले के चित्त पर अंक-सा हो जाता है कि विधाता ने कालिदास को कितनी बड़ी कल्पनाशक्ति दी थी। मनुष्य की प्रकृति जानने और स्थान का वर्णन करने और स्वभाव का लालित्य दिखाने में यह कवि एक ही हुआ है। मेघदूत का अवलोकन करने से ये उत्तम गुण कालिदास के भली भाँति दीखते हैं। उनके वाग्विलास की बड़ाई जितनी की जाय थोड़ी है। इस काव्य का प्रकरण संक्षेप से यह है कि कोई यक्ष अपने काम में असावधान हो गया। तब उसके स्वामी कुवेर ने कोप कर उसे बरस दिन के लिए देशनिकाला दिया। इस शाप के वश वह अलकापुरी को छोड़ दक्खिन में रामगिरि पर्वत पर अकेला जा रहा। जब उस पहाड़ में रहते कुछ दिन बीत गये और असाढ़ का बादल उमड़ा, उस विरही को अपनी स्त्री की बहुत सुधि आई, उसने मन में सोचा कि प्यारी के पास कुछ कुशल का सँदेसा भेजना चाहिए। बादल के सामने खड़ा हुआ इसी सोच-विचार में था कि प्रेम की अधिकता में विह्वल हो गया, बादल ही को दूत बनाकर अलकापुरी का मार्ग बताने और अपना सँदेसा सुनाने लगा। रामगिरि से अलका तक जो जो नदी और पहाड़ और तीर्थ और मुख्य मुख्य नगर और देश हैं उनका थोड़ा थोड़ा पता देता गया है। पहले ६५ श्लोकों में अलका तक पहुँचाया है इसी का नाम "पूर्वमेघ" है, फिर "उत्तरमेघ" के ५१ श्लोकों में अलकापुरी की शोभा और यक्षिणी की दशा वर्णन करके अपना सँदेसा बतलाया है। निदान जब बादल से

कहे हुए सँदेसे का वृत्तान्त कुवेर के कान तक पहुँचा उसने दयालु होकर यक्ष का अपराध क्षमा किया और स्त्री-पुरुष का संयोग बरस दिन बीतने से पहले ही करा दिया ॥

हमने हिन्दी छन्दों में यह उल्था अभी पूर्व्वमेघ का किया है, परन्तु विचार है कि यदि अवकाश मिला तो उत्तर का भी करेंगे। एक भाषा के छन्द को दूसरी भाषा के छन्द में उल्था करना कुछ तो आप ही कठिन होता है तिस पर हमारा नियम है कि मूल से उल्था न्यूनाधिक न हो और भाव में भी कुछ विरोध न आवे। इसी से कठिनाई अधिक दीखती है। फिर भी हम आशा करते हैं कि हमारे इस तुच्छ आरम्भ को देखकर कोई हिन्दी-भाषा को अल्पता का दोष न देगा किन्तु विदित होगा कि यह भाषा बड़े विस्तार की है ॥ इति शुभम् ॥

२४ जून १८८२ ई०।

———

दूसरी भूमिका

सन् १८८२ ई० में मेघदूत के पूर्व्वार्द्ध का अनुवाद हिन्दी-भाषा के छन्दों में करके मैंने प्रतिज्ञा की थी कि यदि अवकाश मिला ते। उत्तराद्धं का अनुवाद भी इसी भाँति करके प्रकाशित कराऊँगा। दैव-कृपा से वह प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब दानों भाग इकट्ठे छापे जाते हैं।

२८ फ़रवरी १८८४ ई०

तीसरी भूमिका

जितनी आशा थी उससे अधिक माँग इस ग्रन्थ की हुई इससे जाना गया कि हिन्दी के रसिकों में इसने पूरा आदर पाया। पहले जो कुछ दोष रह गये थे अब तीसरी बार के छापे में दूर कर दिये गये हैं॥

आगरा २२ जौलाई १८९३ ई०

लक्ष्मणसिंह।

विरही यक्ष ।

श्री कालिदासकृत
मेघदूत

॥ श्रीः ॥

मेघदूतपूर्व्वार्द्धम्

मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्त्तुः ॥
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्य्याश्रमेषु ॥१॥
तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥२॥
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः केतकाधानहेतो-
रन्तर्व्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ॥

---

१ यक्षः = देवयोनिविशेषः । विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्व्वकिन्नराः ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

२ प्रथमदिवसे = पाठान्तरे "प्रशमदिवसे" ॥

३ केतकाधानहेतुः = केतक्या गर्भाधानस्य कारणम् ॥

|| श्रीः ||

मेघदूत पूर्वार्ध

सवैया

१ कारज में उनमत्त भएँ एक जच्छ दई सब खोइ बड़ाई ।
जोय तें दूर रहे बरसैक लों सोइ बड़ी निज नाथ खवाई ॥
जाय बस्यो गिरि राम के आश्रम रूख घनेन में गेह बनाई ।
जानकी स्नानन पुन्य प्रताप भई जहँ नीरन में पविताई ॥

२ बसि ताहि महीधर में बिरही कितने एक मास बिताइ गयो ।
भुजबंद गए गिर सोरन के इतनो थकि दूबर गात भयो ॥
फिर लागत मास असाढ़ लख्यो घन शैल पै सोहनो आइ छयो ।
झुक के मनहू गजराज बली गढ़ढावन खेल मचाइ रह्यो ॥

३ तिहिं केतकी फूल फुलावनहार के सन्मुख दास कुवेर गयो ।
उर अन्तर में अँसुआ भर के बड़ी बेर लों सोचत ठाढ़ो रह्यो ॥

---

१ यक्ष एक प्रकार के उपदेवता हैं जिनका स्वामी कुबेर है । एक यक्ष अपने काम में उन्मत्त होकर अपराधी ठहरा । कुबेर ने कोप कर उसे बरस दिन का देशनिकाला दिया । इससे उसकी सब बड़ाई जाती रही । शाप के बस घरबार छोड़ वह रामगिरि पर्वत पर जहाँ वनवास के समय श्री जानकी जी कुछ दिन रही थीं और उनके स्नानों से वहाँ के जल पवित्र हुए थे, शीतल छाँह में घर बनाकर जा बसा ॥

२ उस पहाड़ में रहते जब कुछ महीने बीत गए तो वह बिरह के दुःख में इतना दुबला होगया कि बाँह में भुजबंद भी न ठहरे । असाढ़ लगते ही उसने पहाड़ के सानु पर छाया हुआ बादल ऐसे देखा मानो कोई बड़ा हाथी झुक कर गढ़ी का परकोटा ढाह रहा है ॥

३ केतकी सावन-भादों में फूलती है इसलिए बादल उसके गर्भ का कारण कहलाता है । उस बादल के सन्मुख खड़ा होकर यक्ष बहुत देर तक कुछ

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम्पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ॥
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ॥
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

---

४ जीमूतेन = जलधरेण ॥

अर्घः = आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः ।
यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्त्तितम् ॥

अपि च

रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः ।
सामान्यः सर्व्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः ॥

चित कंठ लगे सुखियानहु कौ न रहे थिर देखत मेघ नयो।
फिर बात कहा उनकी कहिये जिन मीत तें दूर बसेरो लयो॥
४ सावन आइ समीप लग्यो तब नारि के प्रान बचावन काज।
बादर दूत बनावन कों कुशलात सँदेस पठावन काज॥
कूटजफूल नए कर लै मनकल्पित अर्घ बनावन काज।
बोल उठ्यो हँसते मुख ह्वै वह मेघ तें प्रीति बढ़ावन काज॥

घनात्तरी

५ घाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह
ऐसो घन कैसे दूतकाज भुगतावेगो।
नेह कैा सँदेसो हाथ चातुर पठैवे जोग
बादर कहो जी ताहि कैसे के सुनावेगो।
बाढ़ी उत्कंठा जत्त बुद्धि बिसरानी सब
वाही सों निहोर्‌यो जानि काज कर आवेगो।
कामातुर होत हैं सदाई मतिहीन तिन्हें
चेत औ अचेत माहँ भेद कहाँ पावेगो॥

सोचता रहा। इस पर कवि कहता है कि घटा उमड़ने के समय संयोगियों का भी चित्त ठिकाने नहीं रहता फिर वियोगियों की क्या दशा न होनी चाहिए॥

४ जब सावन आया यत्त ने जाना कि यक्षिणी विरह की ताप में मर जायगी इसलिए उसके पास अपनी कुशल का सँदेसा भेजना चाहिए। यह सोचकर मन में ठाना कि बादल के हाथ सँदेसा भेजूँगा। बादल को आदर देने के लिए वन के कुछ फूलों का अर्घ हाथ में ले वह हँसते मुख प्रीति मिली बातें कहने लगा॥

५ बादल तो धूप और धूँआ और पानी और पवन मिलकर बनता है और प्रेम का सँदेसा ले जाने को बड़ा चतुर मनुष्य चाहिए, परंतु उस यत्त को अपने चाव में न सूझा कि बादल क्योंकर सँदेसा पहुँचावेगा। इस पर कवि कहता है कि काम के सताये पुरुष स्वभाव ही से मूर्ख होते हैं, चेत और अचेत में भेद नहीं जान सकते॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ॥
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ॥
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

---

६ पुष्करावर्त्तकाः = पुष्करा नाम ते मेघा बृहतस्तोयमत्सराः ।

पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥

मघोनः प्रकृतिपुरुषं = इन्द्रस्य प्रधानपुरुषम् ॥

७ सन्तप्तानाम् = आतपेन वा प्रवासविरहेण वा संज्वरितानाम् ॥

धनपतिः = कुबेरः ॥

६ पुष्करावर्तक हैं प्रसिद्ध लोकलोकन में
बंश तिनही के नीके तैंने जन्म पायो है।
इच्छारूप धारन की गति है दई ने दई
मंत्री सुरराजहू ने आपनो बनायो है।
एते गुन जानि तोपै मँगिता भयो हूँ मेघ
बंधुन तें दूर मोहि विधि ने बसायो है।
सज्जन पै माँगनो बिनाहू सरें काज भलो
नीच पै सरेहू काज आछो ना बतायो है॥

७ तू तौ है सहाई तनताप के सताएन कौ
भयो हूँ वियोगी मैं कुबेरकोप पाइ के।
छेम कौ सँदेसो यातें मेरी प्रानप्यारी पास
अलकापुरी में मीत दीजो पहुँचाइ के।
देखने ही जोग आछि नगरी बनी है वह
लीनो जच्छराजन सुवास जहाँ आइ के।
बागन में बाहरें विराजें चंदचूड़ जा के
नित्त ही अटान रहें चंदछटा छाइ के॥

---

६ पुष्करावर्तक बादलों की एक उत्तम जाति है। यक्ष कहता है कि हे मेघ मैं जानता हूँ तू इसी जाति का है और यह भी जानता हूँ कि जैसा रूप चाहे तू धर सकता है और इंद्र का सखा भी तू है इसलिए तुझसे याचना करने में मैं शंका नहीं करता क्योंकि सज्जन पुरुष से याचना पूरी न हो तौ भी अच्छी है परन्तु नीच से पूरी हो जाय तौ भी अच्छी नहीं॥

७ यक्ष बादल से कहता है कि तू सदा दुःखियों का सहाई है और मैं कुबेर के शापवश दुखी हूँ, इसलिए तू मेरा सँदेसा मेरी प्यारी के पास अलकापुरी में पहुँचा दे। वह सुंदर नगरी देखने योग्य है, यक्षनायक उसमें बसते हैं। बागों में शिवजी ठहरते हैं, उनके मस्तक के चंद्रमा की चाँदनी से अलका के महल सदा चमकते रहते हैं॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ॥
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्व्वः ॥
गर्भाधानक्षमपरिचयं नूनमाबद्धमाला-
स्सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥९॥

ताञ्चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीम्
अव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ॥
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥१०॥

---

१ बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसाङ्किताः खगाः ।
मृगा वा वामगा दृष्टाः सैन्यसम्पद्बलप्रदाः ॥
सगर्व्वः = सहर्षः ॥

८ वातपंथ जात तोहि नारी परदेसिन की
देखेंगी बार बार अलकें कर सों उठाइ।
बालम के आवन की आसा उर लाइ लाइ
धीरज धरेंगी नेक चिंता जिय सों बिहाइ।
आएँ तो समीप कोई नारि को बिसारे नाहिं
बिरहाबिथा में नर जौपै अपनी बसाइ।
ऐसो मंदभागी मैं हूँ दूसरो न और होइ
पराधीनवृत्ति हेत बैठो सुख हूँ नसाइ॥

दोहा

९ मंद मंद मारुत बहे जैसो तोहि सुहाइ।
हरषित यह चातक मधुर बाँए बोल्यो आइ॥
बगुली हू नभ में सुभग आई बाँधि कतार।
गरभदान समरथ समझि तोहि देन मनुहार॥
१० मग में रुके न तू कहूँ लखिहै भौजी जाइ।
जीवति दिन गिनती करति पतिभरता चित लाइ॥

---

८ पवन के मार्ग में जाते हुए तुझे परदेसियों की स्त्रियाँ अपने खुले बाल मुख से हटा हटा कर बार बार देखेंगी (खुले बाल इसलिए हैं कि जिस स्त्री का पति परदेश गया हो उसको अलक बांधना वर्जित है)। बादल देखकर उन्हें भरोसा होगा कि अब हमारे पति घर आवेंगे क्योंकि बरसा-काल में अपनी स्त्री को विरह के दुःख में छोड़ना कोई नहीं चाहता, ऐसा मन्दभागी तो मैं ही हूँ कि पराधीन होकर अपना सब सुख खो बैठा हूँ॥

९ मंद मंद पवन चलती है, बाँए पर पपीहा बोलता है, बगली आकाश में पंक्ति बांध कर आई हैं मानो तुझे गर्भ का दाता जान आदर देती हैं। ये अच्छे अच्छे सगुन तेरे लिये हैं॥

१० इन सगुनों से निश्चय है कि मार्ग में कुछ विघ्न तुझे न होगा और तू

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्ज्जितं मानसोत्काः ॥
आकैलासाद्बिसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ॥
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ॥
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपयुज्य ॥१३॥

---

११ उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् = शिलीन्ध्र एव छत्रं यस्याः ताम् ॥
बिसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः = मृणालाग्राणां छेदैः शकलैः पाथेयवन्तः ॥

नेही हिरदो नारि कौ कोमल जैसो फूल ।
बिरह माँहि आसा करति ताहिं कछुक दृढ़मूल ॥

११ छत्रवती छिति कों करति उच्छलिंध्र उपजाइ ।
सो गरजन तेरी सुनत राजहंस हुलसाइ ॥
मानसरोवर चलन कों कमलनाल लै पाथ ।
उड़िहैं धुर कैलासलों गगनपंथ तो साथ ॥

१२ माँगि सीख गिरितुंग पै अब मीतहिं भरि अंक ।
पावन रघुपति-चरण सों अंकित जाको लंक ॥
जब जब तू याने मिलत बहुत दिनन में आइ ।
प्रीति प्रगट तो में करत ताती भाप उठाइ ॥

कुंडलिया

१३ गैल बताऊँ मेघ अब जिहिं चलि पावे चैन ।
फिर सुनियो संदेस मम कानन अति सुखदैन ॥

अपनी भावज अर्थात् मेरी स्त्री को जीती पावेगा । वह मेरे शाप के दिन गिनती होगी । स्त्री के कोमल हृदय को विरह में आसा ही कुम्हलाने से बचाती है ॥

११ बादल की गरज से उच्छलींध्र अर्थात् खुमी उपजती है मानो पृथ्वी को छत्र मिलता है, ऐसी गरज सुन कर राजहंसों को मानसरोवर जाने का उत्साह होगा । मार्ग में खाने के लिए कमलनाल का पाथ अर्थात् तोसा लेकर कैलास तक वे तेरे साथ आकाश में उड़ते हुए जायँगे ॥

१२ अब तू इस ऊँचे पहाड़ से भेट कर और सीख माँग कर अलकापुरी को चल दे । उसकी पीठ पर श्री रामचन्द्र के पुनीत चरणों के चिह्न हैं और यह तेरा पुराना मित्र है । बरस बरस दिन पीछे जब तू इससे मिलता है यह तत्ती भाप निकालता है मानो प्रीति के तत्ते आँसू गिराता है (तत्ते आँसू प्रीति के और ठंढे शोक के होते हैं) । मेघ की और पर्वत की आपस में सहज मित्रता कवि लोग बाँधा करते हैं । आगे इस मेघदूत में कई जगह यह मित्रता दिखाई जायगी ॥

१३ हे मेघ अब मैं पहले तुझे अलकापुरी का मार्ग बताता हूँ जिसमें चलकर

अद्रेः शृङ्गं वहति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभिः
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ॥
स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ् मुखः खं
दिङ् नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ॥
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमालप्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

---

१४ सरसनिचुलात् = आर्द्रस्थलवेतसाः यस्मिन् तस्मात् ॥
दिङ्नागानां = दिग्गजानाम् ॥
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्व्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥
अवलेपान् = गर्व्वान् ॥

१५ आखण्डलस्य = इन्द्रस्य ॥

कानन अति सुखदैन थके वा मग में जब तू।
चलियो धरि धरि पाँव शिखर ऊँचिन पै तब तू॥
भूख लगे सोता मिलें उथरे अरु बिन मैल।
पी तिन कौ पानी तुरत लीजो अपनी गैल॥

१४ जात तोहि ऊपर निरखि कहिहैं सीस उठाइ।
मुग्धा सिद्धबधू चकित आपस में बतराइ॥
आपस में बतराइ बड़ो अचरज कौ लेखो।
पवन उड़ाए जात खंड परवत कौं देखो॥
निचुलसरस यह भूमि तजि अब उत्तर चलि भ्रात।
मेटत मद दिग्गजन के नभमारग में जात॥

१५ सोहत पूरब ओर यह रतनजाल अनुमान।
निकसत बाँबी ते भलो इंद्रचाप रुचदान॥
इंद्रचाप रुचदान जासु मिलि तो तन कारो।
पावत है छबि अधिक लगत नैनन को प्यारो॥
मोरचंद्रिका संग सुभग जैसे मन मोहत।
गोपवेष गोविंद बहुत स्यामल तन सोहत॥

तू सुख पावेगा फिर अपना सँदेसा सुनाऊँगा। उस मार्ग में जो तू थक जाय तो पहाड़ों के शिखर पर पाँव धर कर विश्राम करता हुआ चलियो और भूख लगे तो उथले सोतों का निर्मल जल पी लीजो॥

१४ आकाश में तुझे जाता हुआ देखकर सिद्धों की मुग्धा स्त्रियाँ आपस में चकित-सी होकर कहेंगी कि क्या यह पर्वत का टुकड़ा है जिसे पवन उड़ाये लिये जाता है (सिद्ध एक प्रकार के देवता हैं जो आकाश में रहते हैं)। अब तू इस आले स्थान से जहाँ बेत उपजते हैं उत्तर को चल और दिग्गजों को जो अपने बड़े शरीर का घमंड है वह घमंड उनका तुझे देख कर मिट जायगा क्योंकि वे जानेंगे कि यह हमसे भी बड़ा आया॥

१५ लोकप्रसिद्ध बात है कि इंद्रधनुष साँप की बाँबी से निकलता है। ऐसा ही कालिदास भी कहते हैं और उपमा देते हैं कि काला बादल रंग बिरंगे धनुष से वह शोभा पावेगा जो मोरचंद्रिका से श्रीकृष्ण का श्याम शरीर पाता था॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥
सद्यस्सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित् पश्चाद्व्रज लघुगतिः किञ्चिदेवोत्तरेण ॥१६॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ॥
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किम्पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवश्शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

---

१६ त्वय्यायत्तं = त्वयि आयत्तं = ते अधीनम् ॥
भ्रूविकारानभिज्ञैः = भ्रुकुटिविलासानामज्ञातृभिः ॥

१७ वनोपप्लवं = दवाग्निम् ॥

१८ अमरमिथुनप्रेक्षणीयां = खेचरदम्पतीदर्शनीयाम् ॥

१६ करके दृग ऊँचे लखें भोरे भरे पियार ।
ग्रामबधू तुहि जानके खेतीफल दातार ॥
खेतीफल दातार पहुँचियो मालभूमिवर ।
नए जुते जहँ खेत [illegible]त होईं अधिकतर ॥
कछु पच्छिम दिसि पलटि शीघ्र गति तन में धरके ।
चलियो जलधर मीत फेर उत्तर मुख करके ॥

सोरठा

१७ अम्रकूट तनताप मेटी तैं बहुधा बरसि ।
सो धरिहै सिर आप तो मारग के थकित कों ॥
मीतहिं आए द्वार बिमुख होत नहिं नीचहू ।
सुमिरि प्रथम उपकार ऊँच बिमुख कब ह्वै सके ॥
१८ रह्यो चहूँ दिसि छाइ पके आम वन शैल वह ।
ता सिर जब तू जाइ बैठै चिक्कन चिकुर रँग ॥
तुरत लहे छबि सोइ जोग देवदम्पति लखन ।
मनहु स्यामता होइ गोरे भूमि उरोज बिच ॥

---

१६ हे मेघ तुझे गाँव की स्त्रियाँ यह जानकर कि खेती का फल तेरे ही अधीन है, नेह भरी आँखों से जो भौंह चलाना नहीं जानती हैं देखेंगी। तू मालदेश को जाना जहाँ नए जुते खेतों से सुहावनी सुगंध निकलती होगी। फिर थोड़ा-सा पच्छिम की ओर पलटकर तुरन्त उत्तर को चल दीजो ॥

१७ तैंनें मेंह बरसा कर बहुत बार अम्रकूट पर्वत की ताप मिटाई है इसलिये जब तू मारग का थका हुआ उसके पास पहुँचेगा वह तुझे अपने सिर पर रख लेगा क्योंकि जिसने कुछ उपकार पहले कर लिया हो उसे द्वार पर आए नीच भी आदर देते हैं फिर ऊँचों का तो क्या कहना है ॥

१८ वह पहाड़ पके आंबों से छाया हुआ पीला दीखता होगा। उसके शिखर पर जब तू चिकनी बेनी के समान काला जाकर बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो पृथ्वी के पयोधर में श्यामता है। इस शोभा को देवता अपनी स्त्रियों सहित देख के प्रसन्न होंगे ॥

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमांश्चित्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः ॥
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥ १९ ॥

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त्तं
तोयोत्सर्गाद्द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ॥
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ २० ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टिः
जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ॥
अन्तस्सारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २१ ॥

---

१९ नैदाघम् = निदाघर्तुभवम् ॥ (निदाघः ग्रीष्मः) ॥

२० रेवा = नर्म्मदा ॥

रेवा तु नर्म्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका—इत्यमरः ॥

भक्तिच्छेदः = रेखारचना ॥

२१ तिक्तैः = सुगन्धिभिः ॥

वासितं = सुरभितम् ॥

प्रतिहतरयं = प्रतिरुद्धो वेगो यस्य तत् ॥

१९ थक्यो पंथ चलि गात निकट रहे जब जाय तू ।
चित्रकूट विख्यात ऊँचे सिर तुहि धारिहै ॥
करियो धारासार हरन तासु ग्रीषम-अगिनि ।
सज्जन सँग उपकार फलत बिलंब न कछु करे ॥

२० बिलमि तहाँ कछु बार विहरति जहँ बनचर-बधू ।
करियो धारासार फिर द्रुतगति मग लाँघियो ॥
लखियो रेवा जाइ बिंध्यशिलन पै यों बहे ।
मानहु दई रचाइ गजतन रजरेखा बिशद ॥

चौपाई

२१ लै चलियो वा नदि के नीरा । जमुनीकुंजन रुकि भए धीरा ॥
बन-हाथिन जिन में मद त्यागे । अधिक सुगंधित तिन हित लागे ॥
अंतर जब तेरौ भरि जाई । पवनहु रोकि न तोहि सकाई ॥
रीते सबहि तुच्छ जग माहीं । बिन पूरनता गौरव नाहीं ॥

---

१९ चित्रकूट पर्वत भी तुझे थका देख कर अपने सिर पर उठा लेगा फिर तू तुरंत पानी बरसा कर निदाघ-अग्नि को मिटावेगा क्योंकि सज्जन के साथ जो भलाई की जाय उसका फल तुरंत मिलता है (निदाघ=जेठ असाढ़ की धूप) ॥

२० जिसकी कुंजों में वनवासी लोगों की स्त्रियां विहार करती हैं उस पहाड़ में थोड़ी बेर ठहर कर और जल बरसने से शीघ्रगति होकर तू मार्ग उलांघियो । आगे तुझे रेवा (नर्मदा) नदी मिलेगी जो विंध्याचल में बहती हुई दूर से ऐसी दीखती है मानो हाथी के शरीर में स्वेत मिट्टी की लकीरों से सिँगार किया है ॥

२१ उस रेवा नदी का जल जामुन के रूखों में रुक रुक कर धीरे धीरे चलता है और वन के हाथी उसमें नहाते हैं । उनके मद से सुगंधित उस जल को पीकर तू आगे चलियो । जल पीने से तू भारी हो जायगा इसलिए मार्ग में तुझे पवन न रोक सकेगी ॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केशरैरर्द्धरूढै:
आविर्भूतप्रथममुकुला: कन्दलीश्चानुकच्छम् ॥
दग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्या:
शारङ्गास्ते जललवमुच: सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २२ ॥

अम्भोविन्दुग्रहणरभसांश्चातकान् वीक्षमाणा:
श्रेणीभूता: परिगणनया निर्द्दिशन्तो बलाका: ॥
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धा:
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ २३ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासो:
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्व्वते पर्व्वते ते ॥
शुक्लापाङ्गै: सजलनयनै: स्वागतीकृत्य केका:
प्रत्युद्यात: कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

---

२३ वीक्षमाणा: = कौतुकात् पश्यन्त: ॥

२४ ककुभसुरभौ = अर्जुनसुगन्धिनि ॥
केका: = केका वाणी मयूरस्य ॥
प्रत्युद्यात: = कृतातिथ्य: ॥

२२ देखि कदंब सुमन मन भाए । हरित स्याम मकरंद सुहाए ॥
कूलन माहिं निरखि कंदलिका । नवकुसुमित बहु सुंदर कलिका ॥
दावानल भसमित कानन में । भूमि सुगंध सूँघि मुद मन में ॥
मोर जलद तुहि आदर दैहैं । आगे उड़ि उड़ि पंथ दिखैहैं ॥

२३ सिद्ध निरखिहैं तो सँग आवत । चातक बारिबूँद रट लावत ॥
बगपाँती एकलँग लखि लैहैं । गिनती कर कर तियन दिखैहैं ॥
सो तिय सुनत घोर घन तेरी । काँपि चौंकि अकुलायँ घनेरी ॥
अंक लगाय बलम सुख पावें । बहु भाँतिन तेरे गुन गावें ॥

२४ यद्यपि मम प्यारी हित लागे । तू चहे चलन मंद गति त्यागे ॥
तदपि डरों कहुँ बिलमि न जाई । ककुभसुगंधित शैलन भाई ॥
सुनि आदरयुतबोल शिखिन के । सजल नैन कोये सित जिनके ॥
का बिधि तुरत गमन होइ तेरो । इहि शंका व्याकुल मन मेरो ॥

---

२२ तेरे बरसने से कदंबों में काले पीले रुओं के फूल लगेंगे, कछारों में कंदली, कल्यायँगी, दावानल से जले हुए वन में सुगंध उठेगी। इनको देख और सूँघ कर मोर मगन होंगे और तेरे आगे उड़ उड़ कर मार्ग दिखावेंगे (बादल की और मोर की सहज ही मित्रता है) ॥

२३ सिद्ध जात के देवता (जो आकाश में रहते हैं) तेरे साथ आते हुए मेह की बूँद का रस लेनेवाले पपीहों को बड़े चाव से देखेंगे और बगलों की पंक्ति को गिन गिन कर अपनी स्त्रियों को दिखावेंगे। तेरी गरज से डरती चौंकती हुई उन्हीं स्त्रियों को कंठ लगाकर वे तेरे गुन गावेंगे ॥

२४ हे मेघ, तू मेरी प्यारी के पास सँदेसा पहुँचाने को यद्यपि शीघ्र जाना चाहेगा फिर भी मुझे डर है कि पहाड़ों में ककुभ (अर्जुन) की अच्छी सुगंध सूँघ कर तू कहीं ठहर न जाय और यह भी डर है कि श्वेत और सजल कोयेंवाले मोरों की आदरभरी कूक सुनकर तेरा तुरंत चलना क्योंकर होगा ॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैस्सूचिभिन्नैः
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ॥
त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २५ ॥

तेषां दिक्षु प्रथित विदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमतिमहत् कामुकत्वस्य लब्धा ॥
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादुयुक्तं
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्म्मि ॥ २६ ॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ॥
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २७ ॥

---

२५ नीडः = पक्षिगृहम् ॥

दशार्णाः = नाम देशः ॥

२६ फलमतिमहत् = "कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते" इति भावः ॥

२७ नीचैराख्यं गिरिम् = नीचगिरिम् ॥

२५ पहुँचि दशारन जब तू जाई। कछु दिन हंस बसें तहँ भाई॥
कलित केतकी जहँ मन मोहैं। उपवन सीम पंडुरँग सोहैं॥
नीड़ समय पंछी बहु आवें। रूख्यन माहिं कलोल मचावें॥
स्याम बरन सुंदर दुतिमंता। जमुनीफल पकि भे बन-अंता॥

२६ विदिशा नाम तहाँ रजधानी। देश देश विख्यात बखानी॥
ता ढिंग पहुँचि जबहि तू जैहै। रसविलास को अतिफल पैहै॥
वेत्रवती तट गरजत धीरा। लीजो मधुर तरंगित नीरा॥
मनहुँ कुटिल भ्रकुटीयुत मुख तें। अधरामृत लीनो अति सुख तें॥

सवैया

२७ है विदिशा ढिग नीचगिरी करियो बिसराम तहाँ घन जाइ के।
तोहि मिलें लखिहै पुलकात सो आछे कदंब के फूलन छाइ के॥
वेस्यन के अँगराग की गंधि गुफान तें व्यारि के संग उड़ाइ के।
दैहै बताइ बिहार करें यहाँ नागर छैल नए नए आइ के॥

---

२५ तेरे पहुँचने से दशारन देश में कुछ दिन हंस ठहरेंगे। उस देश में केतकी बहुत होती हैं। उनके फूलों से बागों की सीमा पीली दीखेगी। गाँव के निकट के रूखों में घोंसला बनाने के दिनों पखेरू कलोल करेंगे, जामुन के पके फलों से वन के किनारे स्याम दिखाई देंगे॥

२६ दशारन की राजधानी विदिशा (अर्थात् भेलसा) है जहाँ वेत्रवती नदी बहती है। तू मंद मंद गरज कर उस तरंगित नदी का जल ऐसे लेगा माने भौंह चढ़ाती हुई नायिका का अधरामृत नायक ने लिया और यही रसनाविलास का उत्तम फल है (कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते)॥ कवि लोग मेघ को नायक और नदी को नायिका बांधा करते हैं॥

२७ विदिशा के निकट नीचगिरि नाम पर्वत है। उस पर तू विश्राम लीजो। वह फूले हुए कदंबों से ऐसे दीखेगा माने तेरे मिलाप से पुलकित है। उसकी गुफाओं से वेश्याओं के अंगराग की सुगंधि निकलती है। इससे जाना जायगा कि नगर के छैला यहाँ आ आकर विहार करते हैं॥

विश्रान्तः सन् व्रज नगनदीतीरजातानि सिञ्चन्
उद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ॥
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२८॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥२९॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्त्तनाभेः ॥
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥३०॥

---

२८ पुष्पलावी = पुष्पावचायिका ॥

२९ उज्जयिनी स्याद्विशालाऽवन्ती पुष्पकरण्डिनी ॥

३० निर्विन्ध्या = नाम नदी ॥
विभ्रमः = विलासः ॥

२८ ठैर के नेक तहाँ चलियो बरसावत नीर नई बुँदियान तें ।
सींचत नाग नदी तट बागन छाइ चमेली रहीं कलियान तें
दै छिन छाँह कौ दान सखा करियो पहचान तू मालिनियान तें ।
कान के फूल गए जिनके कुम्हलाइ से पोंछत स्वेद मुखान तें ॥

२९ तो दिश उत्तर चालनहार के मारग केताहू फेर परे किन ।
वा उज्जयनि के आछे अटा पर से बिन तू चलियो कितहू जिन ।
चंचल नैन वहाँ अबलान के बिज्जुछटा चकचौंधे करे छिन ।
जो न लख्यो उन नैनन तू हक़नाहक देह धरेही फिरे गिन ॥

३० रस बीच में लै चलियो निरबिन्ध कौ जो मग तेरो निहारती है ।
कटि किंकिन मानो बिहंगम पाँति तरंग उठे झनकारती है ।
मन रंजन चालि अनोखी चले अरु भौंर की नाभि उघारती है ।
बतरान है मीत सों आदि यही तिय विभ्रम मोहनी डारती है ॥

---

२८ वहाँ थोड़ी बेर ठहर कर तू नग नदी तीर के बगीचों में चमेलियों को अपनी नई बूँदों से सींचता हुआ चलियो । दुपहरी में मालिन फूल बीनती होंगी, मुख का पसीना पोँछते पोँछते कानों पर रक्खे हुए फूल के गहने उनके कुम्हला गए होंगे, तेरी छाया पड़न से सुख पाकर वे तेरा गुन मानेंगी ॥

२९ तू अलकापुरी के जानेवाला है । वह उत्तर दिशा में है । उज्जयिनी होकर जायगा तो कुछ फेर पड़ेगा परंतु फेर पड़े तो पड़े उस नगरी को देखे बिना मत रहियो । वहाँ स्त्रियों के नेत्र बड़े चंचल हैं । तेरी बिजली से चैांधकर अधिक शोभायमान हो जायँगे । जो उन नेत्रों ने तुझे न देखा तो तेरा देह धरना ही अकारथ है ॥

३० मार्ग में निरविंध्या नदी मिलेगी । उसके तट पर जो हंसों की पंक्ति बैठी है सोई माने उसकी कमर की तागड़ी है, हंसों का बोलना है सोई तागड़ी के घुँघुरुओं की झनकार है, उसकी चाल भी अनोखी है अर्थात् चक्कर खाकर चलती है और उसमें भवँर पड़ता है सोई माने तुझे ललचाने को वह अपनी नाभ दिखाती है, क्योंकि स्त्री का हाव-भाव ही प्रीतम के साथ पहला वार्त्तालाप होता है ॥

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ॥
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥३१॥

प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥३२॥

---

३१ सिन्धुः = नाम नदी ॥
व्यञ्जयन्ती = प्रकाशयन्ती ॥

३२ अवन्तीम् = उज्जयिनीम् ॥
उदयन = नाम राजा, वत्सराज इति प्रसिद्धः ॥
पूर्व्वोद्दिष्टां = पूर्व्वोक्ताम् ॥
श्रीविशालां = सम्पत्तिमहतीम् ॥
विशालां पुरीं = उज्जयिनीम् ॥

३१ जल सूखत सिंधु भई पतरी तन बेनी सरीको दिखावती है।
तटरूखन तें झरें पात पके छबि पीरी मनो अँग लावती है।
धरि सोहनो रूप बियोगिनी को वह तोमें सुहाग मनावती है।
करियो घन सो बिधि वाके लिये तनछीनता जो कि मिटावती है॥

घनाक्षरी

३२ ख्यात है अवंती जहाँ केतेक निवास करें
पंडित जनिय्या उदयन की कथान के।
जाइ के तहाँ प्रवेश कीजो वा विशाला बीच
देख लीजो शोभा साज सकल जिहान के।
भूमि तें गए जो नर देवलोक भोगिबे को
करि करि काज बड़े धर्म औ प्रमान के।
तेई फेरि आए संग सारभाग स्वर्ग लाए
प्रबल प्रताप मनो शेष पुन्नदान के॥

---

३१ आगे सिंधु नदी मिलेगी जो तेरे लिए वियोगिनी का रूप धर रही है, जेठ मास बीत चुका है इससे सूखकर पतली हो गई है, मानो वियोग की बेनी बाँधी है। तट के रूखों मे पीले पत्ते गिरते हैं, उनसे रंग पीला दीखता है, जैसा वियोगिनियों का होता है। तू उसे अपना रस (जल) दीजो जिससे उसकी दुर्बलता मिट जाय॥

३२ उदयन नाम एक बड़ा प्रतापी राजा उज्जयिनी में हुआ है। उसकी बहुत-सी कथा प्रसिद्ध है। इन कथाओं के जाननेवाले पंडित अवंती में बहुत बसते हैं। उसी नगरी में विशाला नाम मुख्य स्थान है, जहाँ पहुँच कर तू सब जगत की शोभा देख लेगा। वह ऐसी उत्तम है मानो स्वर्ग का एक मुख्य टुकड़ा है जिसे अच्छे लोग स्वर्ग भोगकर अपने बचे हुए पुण्यों के प्रताप पृथ्वी पर ले आए हैं॥

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय: ।।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल:
शिप्रावात: प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार: ।।३३।।

जालोद्गीर्णैरुपचितवपु: केशसंस्कारधूपै:
बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहार: ।।
हर्म्येष्वस्या: कुसुमसुरभिष्वध्वखिन्नान्तरात्मा
त्यक्त्वा खेदं ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ।।३४।।

---

३३ शिप्रा = नाम नदी ।।

३४ जालोद्गीर्णैः = गवाक्षमार्गनिर्गतैः ।।
केशसंस्कारधूपैः = वनिताकेशवासनार्थैर्गन्धद्रव्यधूपैः ।।

३३ प्रातकाल फूले नित्त कंजन तें भेंटि भेंटि
रंजन हिये कौं होत गंध सरसानो है।
दीरघ करत मदमाते बोल सारस के
सुरन रसीले सुने कान सुख मानो है।
एते गुन साथ तात सिपिरा नदी कौ वात
पीतम समान वीनती में अति स्यानो है।
सुरतग्लानि हरत सोई तहाँ नारिन की
गातहितकारी जात याही तें बखानो है॥

३४ उड़त झरोखन तें केशगंध-धूप वहाँ
होई अंग तेरो पुष्ट मेघ वाहि पीजो तू।
देखि तोहि बार बार नाचेंगे घरेलू मोर
प्रीति सतकार मीत सोई मान लीजो तू।
सोंधे होइँ फूलन तें मंदिर अवंतिका के
चैन थके गातन कों नैक तहाँ दीजो तू।
ललित तियान पाँव रंजित महावर तें
अंकित अटान जाइ बिसराम कीजो तू॥

---

३३ वहाँ सिपरा नदी का पवन प्रातःकाल खिले कमलों से मिलकर सुगंधित होता है। सारसों (रसिकों अथवा हंसों) की कूक बढ़ाता है, स्त्रियों के शरीर से लग कर पसीने सुखाता है, ये गुन उसमें ऐसे हैं जैसे चतुर नायक में होते हैं॥

३४ अवंती के महलों में स्त्रियाँ अपने केशों को अगर चंदन इत्यादि के धुएँ से सुगंधित करती हैं। वही धुआं झरोखों से उड़ता है, उसे तू पी लेगा तो तेरा शरीर पुष्ट हो जायगा। पालतू मोर तुझे आदर देने के लिए नाचेंगे, वहाँ फूलों से महल महक रहे हैं, चतुर स्त्रियों के महावर लगे पैरों के चिह्न अट्टों की छत पर लगे हैं, उन्हीं छत्तों पर तू बिसराम लीजो॥

भर्त्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डेश्वरस्य ॥
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्याः
तोयक्रीडाविरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥३५॥

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ॥
कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम्
आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३६॥

---

३५ चण्डेश्वरः = चण्डाया ईश्वरः अर्थात् पार्व्वतीपतिः ॥
गन्धवती = नाम नदी ॥

३६ महाकालं = महाकालाख्यं स्थानम्

आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।
मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात् ॥

आमन्द्रं = ईषद्गम्भीरम् ॥

३५ जइयो तू फेर मीत पावन पुनीत ठाँव
चंडेश्वर धाम तीन लोक अधिकारी के ।
नाथ के गरे को छबि देखि अंग तेरे माहिँ
आदर सों लेंगे तोहि गण त्रिपुरारी के ।
करें जलकेलि नारि नागरि नवेली तहाँ
गंधित हैं नीरगंधवती सिंधु प्यारी के ।
नीरन तें मोद औ कमोदन तें लै पराग
पवन झकोरे नित्त रूख बागवारी के ॥

३६ साँझ के बिना जो कहूँ पहुँचे तू और काल
महाकालजू के पुन्य आश्रम में जाइके ।
ठैर तहाँ लीजो ईठ भानु रहे जोलों दीठ
दिवस उजारो रहे छिति छहराइ के ।
संध्यावलि पूजन जब होइ शूलधारी कौ
दुंदुभि की ठौर दीजो गरज सुनाइ के ।
मंद मंद घोरन कौ पावैगौ फल अखंड
ऐसे बरदाई देव-देव कों रिझाइ के ॥

---

३५ फिर उसी नगरी में तू महादेव जी के पवित्र धाम चंडेश्वर जाना, वहाँ तेरे नीले वर्ण को अपने स्वामी के गले की अनुहार देखकर शिव जी के गण तुझे आदर देंगे । उसी धाम में गंधवती नदी बहती है जिसमें कस्तूरी इत्यादि का उबटन लगाकर नगर की स्त्रियाँ नहाती हैं । इससे उसका जल सुगंधित है । उसी जल की सुगंध और नदी के कमलों का पराग लिये हुए पवन बगीचों के वृक्षों को झकोरती रहती है ॥

३६ जो तू सन्ध्याकाल से पहले अथवा पीछे महाकाल के मंदिर पे पहुँचे तो संध्या की आरती के समय तक वहीं ठहरियो । जब आरती होने लगे तू मंद मंद गरजियो । तेरी गरज को दुंदुभि का शब्द जान कर शिव जी प्रसन्न होंगे ॥

पादन्यासैः क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचितबलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ॥
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून्
आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥३७॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजवापुष्परक्तं दधानः ॥
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥३८॥

---

३७ आमोक्ष्यन्ते इत्यादि = आमन्द्राणां गर्ज्जितानामिदं फलम् ॥

३८ नागाजिनेच्छां हर = गजचर्मधारणेच्छां निवर्तय । त्वमेव तत्स्थाने भवेति भावः ॥
स्तिमितं = निश्चलम् ॥

३७ नाचति नवेली तहाँ वेश्या अलवेली बाल
किंकिनो बजति पग धरत सुहावनी।
रत्नजड़ी डाँड़िन के डोलति है ठाढ़ी चौर
थकित भुजान करैं लीला ललचावनी।
जाइ नखरेखन में उनके परेंगी जब
नई बूँद तेरी मेघ सुखसरसावनी।
बड़े से कटाच्छ तोपै भ्रमरावली समान
डारेंगी सनेहभरे वेई मनभावनी॥

३८ बाँधि फेरि मंडल जब लेगो तू छाइ मीत
लाँबीसी भुजान रूप ऊँचे रूखवारो बन।
फूल है जवा कौ नयो ता समान लाल रंग
तेज साँझकाल हू कौ धारि लेगौ कारे तन।
नृत्य समै ओढ्यो चहें आलो गजचर्म नाथ
देखि तोहि भूलि जाइ ताकौ खरो प्यारोपन।
ग्लानि के मिटै ते स्वस्थचित्त ह्वै भवानी तोहि
प्यार सों लखेंगी आज हरष्यो हमारो मन॥

---

३७ उस मन्दिर में वेश्या नाचती होंगी, जिससे उनके पैरों की किंकणी बजती होंगी और रत्नजटित डांड़ीवाले चौंरों के डुलाने[1] से उनकी भुजाएँ थक गई होंगी। उनके नखच्छदों में तेरी बूँद पड़ने से सुख होगा इसलिए तुझे वे बड़े प्यार से कटाच्च करके देखेंगी। उनके कटाच्च ऐसे हैं जैसी भौंरों की पंक्ति (अर्थात् काली और विष-भरी)॥

३८ जब तू ऊँचे ऊँचे रूखोंवाले बन पर छा जायगा और नए फूले हुए जवा-पुष्पों के समान सन्ध्या की अरुणता का प्रतिबिम्ब तेरे काले शरीर में झलकेगा, तौ तू ऐसा दिखाई देगा मानों लोहू टपकता हुआ हाथी का चमड़ा है। तांडव नृत्य के समय शिव जी की इच्छा हाथी का आला चाम ओढ़ने की होती है, तुझे देख कर वह इच्छा पूरी हो जायगी और पार्वती जी को जो ग्लानि लोहू टपकता गजचर्म देखने से होती है वह न होगी, इसलिए वे तुझे प्यार की दृष्टि से देखेंगी॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र रात्रौ
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥
सौदामिन्याः कनकनिकषच्छायया दर्शयोर्व्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्व्विक्लवास्ताः ॥३९॥

तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः ॥
दृष्टे सूर्य्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥४०॥

---

३६ विद्युच्छायया मार्गं दर्शय किन्तु तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां
वृष्टिगर्ज्जिताभ्यां शब्दायमानो मा स्म भूः ॥

४० भवनवलभिः = गृहाच्छादनोपरिभागः ॥
पारावतः = कपोतः ॥

सवैया

३९ मीत के मन्दिर जाति चलीं
मिलिहैं तहाँ केतिक राति में नारी।
मारग सूझ जिन्हें न परै जब
सूचिकाभेदि झुके अँधियारी।
कंचनरेख कसोटी सी दामिनि
तू चमकाइ दिखाइ अगारी।
कीजियो ना कहुँ मेह की घोर
मरें अबला अकुलाइ बिचारी॥

४० थकि जायगी दामिनि तेरी तिया
बहु बेर लों हास विलास करे।
टिक रात में लीजियो काहू अटा
जहाँ सोवत होइँ परेवा परे।
दिन ऊगत फेर उतै चलियो
जित में चलिवे कों रहे दगरे।
सहतात कहाँ नर वे जग में
जिन मीत के कारज सीस धरे॥

३९ अवन्ती में तुझे बहुत सी अभिसारिका नायिका रात में अपने अपने प्रीतमों के पास जाती हुई मिलेंगी। तेरे पहुँचने से अँधेरी ऐसी गाढ़ी झुकेगी मानो सुई से छिद जायगी। जब उस अँधेरी में उनको मार्ग न सूझे तो बिजली ऐसी चमका दीजो जैसे काली कसौटी पै सोने की लकीर होती है परन्तु मेह की घोर मत कीजो नहीं तो वे घबड़ा जायँगी॥

४० चमकते चमकते तेरी प्यारी बिजली थक जायगी, इसलिए किसी एकान्त महल पर जहाँ खटका इतना भी न हो कि सोते हुए कपोत जाग पड़ें, तू रात में बिसराम कर लीजो, फिर प्रातःकाल अलका का मार्ग लीजो, क्योंकि जिसने मित्र का कारज अपने सिर लिया उसे उस कारज के होने तक सुस्ताना नहीं मिलता॥

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ॥
पालेयाश्रुं कमलवदनात् सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥४१॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ॥
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्य्यात्
मोघीकर्त्तुं चटुलसफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥४२॥

---

४१ प्रत्यावृत्तः = प्रत्यागतः ॥

४२ गम्भीरा = नाम नदी ॥
मोघी = विफली ।
सफरः = मीनः ॥
उद्वर्तनम् = उल्लुण्ठनम् ॥

४१ भोर भएँ बनिता खँडितान के
मीत मिलें अँसवा पुछ्जात हैं।
छोड़ियो यातें तुरन्तहि सो मग
जा मग आवत भानु प्रभात हैं।
चाहत वेहु मिटावन कों
नलिनी-मुख ओस के आँसू दिखात हैं।
रोकियो ना उनकी किरनें
अनखाइँ बड़े अनखान की बात हैं॥

४२ अति उज्जल नीर गँभीरा नदी
निरदोष हिये के समान धरै।
मनभावन तो प्रतिबिम्ब सुहावन
ता जल जाइ परै ही परै।
फिर का बिधि होइगो जोग जु तू
निठुराई सखा इतनी पकरै।
सफरी गति चंचल स्वच्छ सरोरुह
वाकी चितौनि निरास करै॥

---

४१ प्रातः का समय ऐसा होता है कि उसमें खंडिता नायिकाओं का क्लेश उनके प्रीतम आकर मिटाते हैं और सूरज देवता भी अपनी प्यारी कमलिनी के मुख से ओस के आँसू पोंछने आते हैं इसलिए तू उस समय सूरज का मार्ग न रोकियो। जो रोकेगा तो सूरज तुझ पै कोप करेंगे और खंडिता नायिका भी क्लेश में रहेंगी॥

४२ गंभीरा नदी का जल ऐसा उज्ज्वल है मानो स्त्री का निर्दोष हृदय। उसमें सफरी मछलियों की झपट हैं सोई मानो कमल समान स्वच्छ नेत्रों के कटाक्ष हैं। उस जलरूपी हृदय में जब तू प्रतिबिम्ब रूप से प्रवेश कर लेगा फिर क्योंकर ऐसा कठोर हो सकेगा कि उन कटाक्षों को देखा अनदेखा करके चला जाय॥

तस्याः किञ्चित् करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ॥
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४३॥

त्वन्निस्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ॥
नीचैर्व्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्व्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४४॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ॥

---

४३ वानीरम् = वेतसम् ॥
विवृतजघनाम् = प्रकटीकृतं जघनं यया ताम् ॥

४४ देवपूर्व्वं गिरिम् = देवगिरिम् ॥
काननोदुम्बराणां परिणमयिता = वनजन्तुफलानां परिपाकयिता ॥

४५ स्कन्दः = पार्व्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः ।
कार्त्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः ॥

दोहा

४३ तट सों उठि वाको सलिल लग्यो डार वानीर।
कर पकरत सरक्यो मनो कटि तें नीलो चीर॥
लिये ताहि कैसे बने प्यारे तेरो गौन।
नगन जघन के तजन कों रसिया समरथ कौन॥

४४ तो बरसत छितिगन्ध मिलि होइ पवन रमनीय।
बनगूलर पकवनप्रबल श्रवनसुभग गजप्रीय॥
शीतल मन्द सुगन्ध बहि करिहै पग पग सेव।
मारग में जब तू चले पहुँचन कों गिरिदेव॥

सवैया

४५ नित्त निवास कुमार करे वहाँ
तू उनकों अन्हवाइयो जाइ के।
पुष्पमई बदरा बनि के
नभगंग मिले फुलवा बरसाइ के।

४३ नदी को कवि ने प्रवत्स्यत्पतिका नायिका बनाया है। उसका नीला जल है सोई नील वस्त्र है, तरङ्ग से उठ कर जो जल वेत की डाल में लगा है मानो चलते समय नायक ने उसकी निशानी ले जाने के लिए वस्त्र पकड़ा है सो तटरूपी कटि से सरक गया है। ऐसी नायिका को छोड़ कर हे मेघ तू क्योंकर आगे जा सकेगा॥

४४ तेरे बरसने से पृथ्वी की सुगंध पवन को सुगंधित करेगी। वही पवन रूखों में मीठी ध्वनि से बहेगी, बनगूलरों को पकावेगी, हाथियों को प्यारी लगेगी, और देवगिरि पर्वत तक मार्ग में तेरी सेवा में रहेगी॥

४५ कहते हैं कि जब तारकासुर को इन्द्र न जीत सका तो देवताओं ने शिव जी से सहायता माँगी। शिव जी ने देवसेना की रक्षा के निमित्त अपना तेज अग्नि को दिया परन्तु अग्नि से सहा न गया, उसने गङ्गा जी में डाला, गङ्गा जी का वही षण्मुख पुत्र हुआ, फिर सरकंडे के वन में कृत्तिकाओं ने पाला इससे नाम उसका शरवनभव और कार्त्तिकेय हुआ। अग्नि से जन्मा इसलिए पावकी कहलाया। कुमार स्वामी और स्कन्द भी उसी बालक के

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूनाम्
अत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः ॥४५॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ॥
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्ज्जितैर्नर्त्तयेथाः ॥४६॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्ज्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ॥

४६ ज्योतिर्लेखावलयि = तारापंक्तिमंडलं यस्मिन्नस्ति तत् ॥
कुवलयदलं = कमलदलम् ॥

जन्म दियो हर पावक में
　　जिनको सुरराज चमू हित लाइ के ।
मन्द करें रवि कौ परतापहु
　　आपने मात पिता गुन पाइ के ॥

४६ जा उनके बरही की पखा
　　गिरि तारे जड़ीसी कहूँ परती है ।
गौरि उठाइ के पूत सनेह सों
　　कानन कंज सों ले धरती है ।
जासु कोएन की उज्जलता
　　शिव के शशि सों समता करती है ॥
ताहि नचाइयो घोर बड़ी करि
　　माँहि गुफान के जो भरती है ॥

४७ चलियो घन पूजि के वा सुर कों
　　शर कौ बन जासु की जन्म-मही है ।
दर बूँदन के मग तेरौ तजें
　　जिन दम्पति सिद्धन बीन गही है ॥

नाम हुए । वाहन उसका मोर है । जब कुमार बड़ा हुआ तारकासुर को मार उसने सदा के लिए देवगिरि पर्वत पर वास लिया । पार्वती शिव उसके मा-बाप कहलाते हैं । हे मेघ देवगिरि पर्वत पै पहुँच कर तू कुमार स्वामी को आकाशगङ्गा के जल में भीगे हुए फूलों की वर्षा करके स्नान कराइयो ॥

४६ स्वामिकार्त्तिक का वाहन होने के कारण मोर पर पार्वती जी बहुत प्यार करती हैं, उसके गिरे हुए पंख को जिसमें चन्दोए तारे से जड़े हैं उठा कर अपने कान पर कमल की ठौर रख लेती हैं और जिसके कोयों को उज्ज्वलता शिव जी के मस्तकवाले चन्द्रमा की चाँदनी से होड़ करती हैं । उसी मोर को तू बड़ी घोर गर्जन करके देवगिरि पै नचाइयो ॥

४७ स्कन्द जी को जिनकी जन्मभूमि सरकंडे का वन है, तू पूज कर आगे

व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥४७॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम् ॥
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टीः
एकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम ॥४८॥

तामुत्तीर्य्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ॥
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्व्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥४९॥

४७ सुरभितनयालम्भजाम् = गोहननाज्जाताम् ॥
रन्तिदेवः = नाम राजा ॥

४८ शार्ङ्गिणः = विष्णोः ॥
सिन्धुः = नदी ॥

४९ दशपुरं = रन्तिदेवस्य नगरम् ॥

करि आदर हौले उलाँघियो तू
गउमेधन तें सरिता जो बही है।
मनु कीरति श्रीरंतिदेवजू की
जलरूप में भूतल फैलि रही है॥

४८ बिसतार के माहिं बड़ी सरिता
वह दूर तें दीखति है पतरी।
हरि रंग के चोर पिये जब तू
जल वामें झुकाइ के देह खरी।
लखि लेहिंगे खेचर तोहि घने
करि दीठि तुरन्तहि चाव भरी
मनु भूमि की मोतिन माल में एक
बड़ी मणि नीलम आनि धरी॥

चौपाई

४९ उतरि ताहि आगे मग लीजो। दशपुर तियन दरश चलि दीजो॥
भरे कुतूहल उनके नैना। जानत भ्रूविलास अरु सेना॥

चलियो। उन्हें बीना सुनाने को सिद्ध लोग अपनी स्त्रियों सहित आते होंगे, सो बीना भीगने के डर से तेरा मार्ग छोड़ देंगे। फिर तुझे चर्मण्वती अर्थात् चम्बल नदी मिलेगी जिसकी उत्पत्ति महाराज रन्तिदेव के अनेक गोमेधों के रुधिर से कहते हैं। तू उस नदी का आदर करता हुआ धीरे धीरे उलांघियो क्योंकि वह मानो जलरूप में रन्तिदेव की कीर्ति है॥

४८ चम्बल का विस्तार तो बहुत है परन्तु दूर से आकाश में फिरनेवालों को ऐसी पतली दीखती है मानो पृथ्वी के गले में मोतियों की माला पड़ी है, सो जब तू काले वर्ण का (कृष्ण के रंग का चोर) उसमें से पानी लेने झुकेगा तो उनको वह ऐसी शोभायमान दीखेगी मानो उसी माला में एक बड़ा नीलम रक्खा है॥

४९ उस नदी को उतर कर तू दशपुर जाना (जो रन्तिदेव की राजधानी है)। वहां की स्त्रियां बहुत चतुर हैं। उनको तू अपना दर्शन दीजो। तुझे देखने

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः ॥
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यषिञ्चन्मुखानि ॥५०॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ॥
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीनाम्
अंतःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५१॥

तस्मादूगच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् ॥
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५२॥

---

५० सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ मनुः २ ॥ १७ ॥

५१ लाङ्गली = हलधरः, बलदेवः ॥

५२ अनुकनखलं = हरिद्वारम् ॥
खलैः को नात्र मुक्तिं वा भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥
शैलराजावतीर्णाम् = हिमालयादागताम् ॥

लखन तोहि जब पलक उठै हैं। अद्भुत मृगलोचन दुति पैहैं॥
जिमि अलिपांति कुन्द सँग भाजति। सो छबि उन नैनन बिच राजति॥

५० चलियो ब्रह्मावर्तहिं छाई। अरु कुरुक्षेत्र पहुँचयो जाई॥
बिकट जुद्ध छत्रिन जहँ कीन्हे। अजहुँ प्रगट तिनके हैं चीन्हे॥
बरसे जहँ अरजुन शितवाना। राजन के सिर बेपरमाना॥
जिमि बरसति तेरी जलधारा। कमलमुखन अनगिनत अपारा॥

शिखरिनी

५१ तजी प्यारी हाला विमल निज बाला दृगन सी
हली बन्धूस्नेही समर तजि सेई सरसुती।
मिले जो तू वाही सुभग सरिता के जलन तें
करें अन्तश्शुद्धी तुव वरण हो सों कृष्ण की॥

५२ चल्यो आगे जय्यो कनखल जहाँ जाह्नवलली।
हिमालय तें आई सगर-कुल-श्रेनी सुरग की।
करी जाने गौरी भ्रुव कुटिल की फेनन हँसी।
जटा शम्भूजी की शशिसहित वीची-कर धरी॥

को जब वे आंख उठावेंगी तो काली पुतली और श्वेत कोयों की शोभा ऐसी दरसेगी मानो चलते हुए कुन्द-पुष्प के पीछे भौंरों की पंक्ति जाती है॥

५० ब्रह्मावर्त देश पर छाया डालता हुआ तू कुरुक्षेत्र पहुँचियो जहां महाभारत की लड़ाई के चिह्न अब तक दीखते हैं। उस लड़ाई में अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से राजाओं के सिर पर बेप्रमाण पैने बाण ऐसे बरसाए थे जैसे तू कमलों पर मेह की धारा बरसाता है॥

५१ कौरव पांडवों को समान बन्धु जान बलदेव जी उनके संग्राम में न गए। प्यारी मदिरा को जिसे सौतभाव से रेवती जी निरखा करती थीं अथवा जो उनके नेत्र समान निर्मल थी, त्याग कर सरस्वती नदी का सेवन करते रहे। उसी नदी के जल से मिलकर तुम्हें वर्णमात्र कृष्ण का भी अन्तस शुद्ध हो जायगा॥

५२ आगे तू कनखल जाना जहां जह्नुसुता (श्री गङ्गा जी) सगर-सन्तान को स्वर्ग की नसेनी हिमालय से उतरी हैं। जब सौतभाव करके पार्वतीजी ने भौंह टेढ़ी की थी तो उसी गङ्गा जी ने अपने श्वेत फेनों से मानों उसकी हँसी करके अपने तरङ्गरूपी हाथों से शिव जी की जटा चन्द्रमा-सहित पकड़ ली थी॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पूर्व्वार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्य्यगम्भः ॥
संसर्पन्त्यास्सपदि भवतः स्रोतसिच्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेनाभिरामा ॥५३॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ॥
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५४ ॥

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ॥
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रैः
आपन्नार्त्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५५ ॥

---

५३ तर्कयेः = विचारयेः ॥

तिर्य्यक् = तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा ॥

स्थानोपगतः = प्रयागादन्यत्र प्राप्तः ॥

५४ प्रभवं = कारणं अथवा पितरम् ॥

५५ सरलः = देवदारुः ॥

५३ जु तू इच्छा वाके करि विमल पानी पियन की ।
भुके आधो लम्बे तन गगन में ज्यों सुरकरी ।
बने तो छाया तें तुरत वह धारा ललित सी ।
मनो है कालिन्दी अनतहिं बिना संगम मिली ॥

५४ पिताजी पै वाके नितहि कसतूरी-मृग बसें ।
शिला सोंधो यातें अरु धवल पालो परि लसे ।
विराजेगो जो तू श्रमहरन ताकी शिखर पै ।
दिपेगो ज्यों गोरे शिववृषभ खोदी कलित है ॥

छप्पै

५५ चलत पवन बन प्रबल घिसत तरु सरल परस्पर ।
प्रगटत अनल प्रचंड हरत चमरीमृग कचभर ।
सो दवागि यदि दहकि देह तिहिं अचल सतावे ।
उचित होइ तब तोहि तुरत ही जल बरसावे ।
करि करि सहस्रधारा जलद दूर तासु बाधा करे ।
फल मुख्य सजन सम्पति यही पीर पराई नित हरे ॥

---

५३ जो तू गंगा जी का जल पीने के दिग्गज की भाँति आकाश में लम्बा हो कर झुकेगा तो तेरे काले रंग की छाया श्वेत जल में पड़कर ऐसी शोभा होगी मानो प्रयाग के बिना ही गंगा जमुना का संगम हुआ है ॥

५४ हिमालय पर्वत पर (जो गंगा जी का पिता कहलाता है) नित्त कस्तूरी मृग बैठते हैं । उनकी नाभि लगने से उसकी शिला सुगन्धित हैं और पाला पड़ने से वह सुफेद दीखता है । मार्ग की थकावट मिटानेवाली उसकी शिखर पर जब तू बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो शिव जी के धौले नाँदिये के सींग पर कीचड़ लग रही है ॥

५५ पवन चलने से सरल (देवदारु) के वृक्ष आपस में रगड़ते हैं । उनसे आग निकल कर वन में लगती है । चिनगारियों से चमरीमृगों की पूँछ के बाल जलते हैं । कदाचित् तेरे सामने वही दावानल आग पहाड़ में लगे तो तू तुरन्त जल बरसा कर पहाड़ की बाधा मिटा दीजो क्योंकि सत्पुरुषों की सम्पत्ति का मुख्य फल यही है कि पराई पीर हरें ॥

ये त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयिष्यन्त्यलङ्घ्यम् ॥
तान् कुर्व्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिहासावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५६॥

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्द्धेन्दुमौलेः
शश्वत् सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः ॥
यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्द्ध्वमुद्धूतपापाः
संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥५७॥

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्य्यमाणाः
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।

---

५६ शरभाः = अष्टापदमृगविशेषाः ॥

५७ उपचितबलिम् = रचितपूजाविधिम् ॥
परीयाः = प्रदक्षिणं कुरु ॥
करणविगमादूर्द्ध्वम् = देहत्यागानन्तरम् ॥

५८ कीचकाः = वेणवः ॥ कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः ॥

५६ सुनत शब्द घनघोर शरभ तिहिं परबत माहीं ।
कुपित होइँगे अधिक तोहि सहि सकिहैं नाहीं ॥
कूद कूद करि दर्प वृथा अपनो तन तोरें ।
तो अलंघ्य को चहें लाँघि ऊपर की ओरें ।
बरसाइ घने करका तिन्हें दीजो बिहँसि भजाइ घन ।
को न जगत लज्जित भयो जिन कीनो निष्फल यतन ॥

५७ शिला एक बिच लषत चिन्ह तहँ पद शशिशेखर ।
नितप्रति पूजत रहत जाहि जोगी सिद्धेश्वर ।
परिक्रमा घन तासु यथाबिधि तू चलि दीजो ।
भक्तिभाव उर लाय नम्र आगे बनि लीजो ।
धरि अचल दीठि तिहिं चरन में श्रद्धमान निष्पाप नर ।
तन तजत मिलत शिवगणन में सदाँ सदाँ को पाइ वर ॥

५८ बाँसरन्ध्र भरि करत पवन धुनि अधिक सुहावन ।
मानहु मुरली बजति मधुर सुर सों मनभावन ।

---

५६ तेरा गरजना सुन कर शरभों को बड़ा कोप होगा (ये आठ पाँव के पशु बड़े बलवान् होते हैं) अपने बल का इन्हें बड़ा घमंड है, तुझे उलाँघने के लिए ऊपर को कूद कूद अपने हाथ पांव तोड़ेंगे, तू ओलों की वरषा से हँसी सी करके उन्हें भगा दीजो। निष्फल यत्न करने से जगत् में किसकी हँसी नहीं हुई ॥

५७ उसी पहाड़ में महादेव जी की चरनशिला है जिसे योगी नित्य पूजते हैं। तू भक्तिपूर्वक नम्र होकर उसकी प्रदक्षिणा कीजो। उसमें श्रद्धामान् शुद्ध पुरुष ध्यान देकर मरने से पीछे शिव जी के गणों में सदा सदा को गिनती पाते हैं ॥

५८ वन के पुराने बाँसों में जो छेद हैं उनमें भर के पवन मधुर मुरली की सी धुनि करेगी। किन्नरी अच्छे सुर से शिव जी के गीत गावेंगी। ऐसे में जो तू भी

निर्ह्लादस्ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥५८॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्
हंस द्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ॥
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्य्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥५९॥

गत्वा चोर्द्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ॥
तुङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशिभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥६०॥

---

५९ भृगुपतियशोवर्त्म = परशुरामस्य यशःप्रवृत्तिकारणम् ॥

६० अट्टहासः = हासादीनां धावल्यं कविसमयसिद्धम् ॥

विह्वल किन्नरनारि आपनी तान सुनावति।
हरषि हरषि जिय माहिं त्रिपुरविजई गुन गावति।
घनघोर जाइ यदि तू करे ज्यों मृदंग गुमकत गुफन।
पूरन समाज संगीत तहँ पशुपति कौ बन जाइ घन॥

चौपाई

५९ आगे हिमपरबत तट पाटी। क्रौञ्चरन्ध्र नामक इक घाटी॥
है सोई हंसन कौ द्वारा। भृगुपति यश प्रगटावनहारा॥
ता बिच कढ़ि उत्तर चलि दीजो। तिरछी गति लम्बोत न कीजो॥
जिमि हरि श्याम पाँव विस्तार्‍यौ। बलि छलिवे कौ व्रत जब धार्‍यौ॥
६० उठि ऊँचो कैलासहिं जइयो। अतिथी वा गिरि को बनि रहियो॥
है दर्पण वह सुर-बनितन कौ। उकसायो लंकेश भुजन कौ।
तुङ्ग शिखर सों नभ में राजत। सितता तासु कुमुद लखि लाजत॥
मनु शिव अट्टहास इक ठौरो। करत प्रकाश दिशन बिच धौरो॥

गरजकर गुफाओं में मृदंग-सा बजा देगा तो महादेव जी के संगीत का पूरा समाज वहाँ बन जायगा॥

५६ आगे हिमालय के तट में क्रौञ्चरंध्र नाम घाटी है उसी में होकर हंस आते-जाते हैं और वही परशुराम के यश का मार्ग है अर्थात् परशुराम का यश पहले उसी में प्रगट हुआ था (क्योंकि महादेव से बाणविद्या सीखकर जब परशुराम क्षत्रियों को जीतने कैलास से उतरे तो अपने बाणों से पहाड़ काट कर यह नया मार्ग उन्होंने बनाया था)। तू लम्बा और तिरछा होकर उससे निकल जाना। तेरा लम्बा शरीर ऐसा शोभायमान होगा जैसा बलि छलने के समय वामन जी का बढ़ाया हुआ पाँव था॥

६० क्रौञ्चरन्ध्र से निकल कर तू ऊपर को चलियो। आगे कैलास मिलेगा। उसका पाहुना बनियो। वह पर्वत स्फटिकमणि का है, इसलिए देवताओं की स्त्रियों का दर्पण है। उसी को रावण ने जड़ से हिला दिया था। उसका श्वेत शिखर आकाश से लग रहा है। वह सुपेदी में कमल को भी लजाता है, मानो शिव जी का अट्टहास इकट्ठा होकर दिशाओं में चमकता है॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ॥
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्रीम्
अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥६१॥

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विहरेत् पादचारेण गौरी ॥
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु ॥६२॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ॥
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे धर्म्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाषयेस्ताः ॥६३॥

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्व्वन् कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ॥

---

६१ स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे = सचिक्कणमर्दितं यदञ्जनं तस्येवाभा यस्मिन् ॥
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदः = तत्कालछिन्नस्य गजदन्तस्य खण्डः ॥

६२ भङ्गीभक्त्या = पर्व्वणां रचनया ॥
स्तम्भितान्तरजलौघः = घनीभावं प्रापितोऽन्तरजलस्य प्रवाहो येन सः ॥

६३ यन्त्रधारागृहत्वम् = जलशेचनयन्त्रम् ॥

६१ वाके निकट जबहिं तू जाई। रहे रुचिर अंजनरँग छाई॥
स्वेतवरण वह शैल निदाना। द्विरददंत सदखंड समाना॥
शोभा तुरत मनोहर पावे। निरखत इकटक नैनन भावे॥
जिमि हलधरतन लसत सुहायो। नीलबसन काँधे लटकायो॥
६२ लिए शम्भु कर निज कर माहीं। भुजगवलय जा कर बिच नाहीं॥
गवरि होइँ पायन यदि फिरती। वा क्रीडागिरि माँहि विचरती॥
पौरीरूप सुभग बनि लीजो। पुष्ट नीर अन्तर को कीजो॥
धरि धरि पग तो पै जब धावें। चढ़त चरन कछु खेद न पावें॥
६३ सुरयुवती जुरि मिलि तहँ आवें। पकरि तोहि जलयन्त्र बनावें॥
रघसि रघसि हीरा कंगन सों। नीर झरावें तो अंगन सों॥
इन खिलवारन तें यदि तेरो। छुटकारो नहिं होइ सबेरो॥
श्रवन कठोर घोर तब कीजो। यों डरपाय उन्हें मग लीजो॥

घनाक्षरी

६४ उपजत वृन्द वृन्द वारिज सुन्हेरो जामें।
ऐसो मानसर कौ लै नीर मेघ पीजो तू।

---

६१ वह पहाड़ तुरन्त के कटे हाथी-दांत के समान उज्ज्वल है और तू कज्जल समान काला है। जब उसके शिखर पर जा कर तू बैठेगा तौ ऐसी शोभा पावेगा मानो गोरे बलदेव जी के कंधे पर नीलाम्बर रक्खा है॥

६२ शिव जी के जिस हाथ में सर्प का कंगन नहीं है उसे अपने हाथ में लिए हुए कदाचित् पार्वती जी उस पहाड़ में पैरों फिरती हुई तुझे मिल जायँ तौ तू अपने भीतर का जल कड़ा करके सीढ़ी का रूप धर लीजो, इसलिये कि तेरे शरीर पै पाँव रख कर चढ़ने में उन्हें खेद न हो॥

६३ वहाँ देवताओं की स्त्रियाँ तुझे पकड़ कर जल छिड़कने की कल अर्थात् पिचकारी बनावेंगी और अपने हीराजड़े कंगनों से तेरे शरीर को रगड़ कर जल बरसावेंगी। उनके इस खेल से जो तेरा छुटकारा न हो सके तौ तू कठोर घोर करके उन्हें डरा दीजो॥

६४ मानसरोवर का जो नीर सुनहरा कमल उपजाता है उसे तू पीजो। ऐरावत

धुन्वन् वातैः सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि-
च्छायाभिन्नस्फटिकविशदं निर्व्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥६४॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ॥
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमानै-
र्मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥६५॥

इति पूर्व्वमेघः ॥

---

६४ **कल्पवृक्षः** = पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः ।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥

निर्विशेः = समुपभुङ्क्ष्व ॥

नगेन्द्रम् = कैलासम् ॥

६५ **दुकूलं** = सूक्ष्मवस्त्रम् ॥

न त्वं दृष्टा न पुनरलकां ज्ञास्यसे = पुनस्त्वन्तु न ज्ञास्यसे इति न किन्तु ज्ञास्यस एव ॥

बूँदन बुन्यो सो मुखवस्त्र वाहि देके नेक
दिग्गज ऐरावत सों प्रीति मानि लीजो तू।
बारि भरी बातन तें कल्पवृत्तपातन में
कान कौं सुहाती सी धुनि सुनाई दीजो तू।
फटिक समान गोरे बिम्बित वा शैल माहिं
जोई तोहि भावें सो विहार फेर कीजो तू॥

६५ देखि जानि लीजो वा नगेन्द्र के बसी है लङ्क
अलका हमारी तीर जह्नु की दुलारी के।
पीतम के अङ्क माहिं एहो कामचारी मेघ
बैठी जिमि नारी छोरें छोर स्वेत सारी के।
पावस में सोई नीर चूवत धरेगी तोहि
ऊँचे से निकेत सातखन की अटारी के।
अबला सँवारे मानो मोतिन सों गूँथे जाल
सीस पै सलोने चारु बेनी बार कारी के॥

इति पूर्व्वमेघः

हाथी को अपनी बूँदों का सिरोपाव देकर उससे प्रीति कीजो। अपने जल से भीगी हुई पवन चला कर कल्पवृत्तों के पत्तों में मीठी धुनि कराइयो। इस भांति उस चित्र विचित्र स्फटिक समान निर्मल पहाड़ में जहाँ चाहे तहाँ फिरियो (क्योंकि वह तेरा मित्र है)॥

६५ कैलास के कटक में जा कर देख लीजो गंगा जी के तीर पर हमारी अलकापुरी ऐसे बस रही है मानो सुपेद साड़ी के छोर खोले हुए कोई नायिका अपने प्यारे की गोद में बैठी है। वही अलका बरसात में तुझ जल टपकाते हुए को अपने ऊँचे महलों पर ऐसे रख लेगी जैसे मोतियों से गूँथे हुए काले अलकजाल को कामिनी अपने मस्तक पर रखती है॥

मेघदूतोत्तरार्द्धम्

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ॥
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥६६॥
हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः
चूड़ापाशे नवकुरुवकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्तेऽपि त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥६७॥
यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ॥
आसेवन्ते मधु रतिरसं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥६८॥

---

६६ तुलयितुं अलं = समीकर्तुम् पर्याप्ताः ॥

६७ कमलकुन्दादितत्तत्कार्य्यसमाहाराभिधानादर्थात्
सर्व्वर्तुसमाहारसिद्धिः ॥

६८ सितमणिमयानि = स्फटिकमणिमयानि ॥
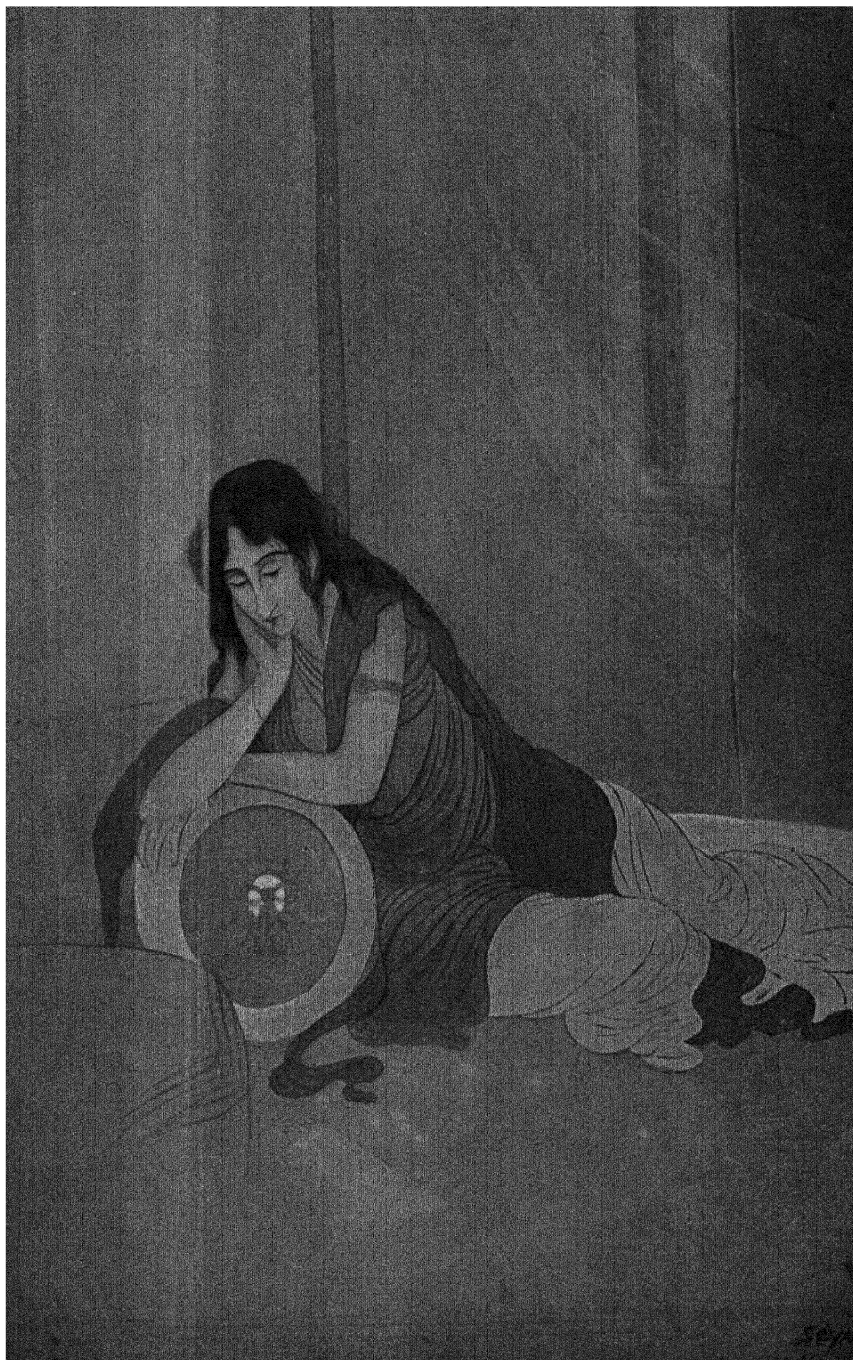
विरहिणी यक्ष-पत्नी ।

मेघदूत उत्तरार्ध

सवैया

६६ होड़ वहाँ करिहैं बहु भाँतिन तो सँग मन्दिर नीकी छटा के
तू चपला सुरचाप लिये उनमें अबला अरु चित्र अटाके ॥
तो उर नीर वहाँ भुंमि हीर मृदङ्ग उतै इत शोर घटा के
तुङ्ग है तू तौ शिखा उनकी परसिद्ध हैं नाम सों अभ्रचटा के ॥
६७ तिय हाथन केलिकमोद वहाँ अलकावलि सोहति कुन्दकली
रजलोध्रप्रसून परे मुख पै दुति दीखति ज्यों पियराई मली ।
कुरवा नए चोटिल माहिं लसें अरु कान शरीषन की अवली
तुहि देखत फूल कदम्ब खिलें सोई माँग धरे सुखमा है भली ॥
६८ स्वेत बिलौर के भानन में वहाँ फूल से तारकबिम्ब परें नित
तो मधुरी धुनि के अनुमान मृदंग बजें सुर मन्द भरे नित ।

---

६६ हे मेघ अलका के महल अनेक भांति तेरी बराबरी करेंगे । तेरे साथ बिजली और इन्द्र-धनुष है उनमें चंचल स्त्री और चित्रकारी हैं । तेरे अन्तर में उज्ज्वल नीर हैं उनके आंगनों में स्फटिकमणि जड़ी हैं । तुझमें घोर है उनमें संगीत के मृदङ्ग बजते हैं तू ऊँचा बहुत है उनकी मुँडेरी भी अभ्रचट (अर्थात् बादल चाटनेवाली) कहलाती हैं (महलों के नाम बहुधा अभ्रंकश, अभ्रंलिहाग्र, मेघपृष्ठ इत्यादि होते हैं) ॥

६७ वहां स्त्रियों के हाथों में खेलन के कमल हैं, अलकों में कुन्द की कली हैं, लोध्र की रज से मुख की कान्ति पीली दीखती है, कानों पर सिरस के फूल रखे हैं, चोटियों में कुरबक गूँथे हैं और बरसा ऋतु में फूलनेवाले कदम्ब के फूल मांगों में लगे हैं (तात्पर्य यह कि अलका में छःओं ऋतु के फूल सदा फूलते हैं) ॥

६८ वहां स्फटिकमणि के महलों में तारों की छाया ऐसी पड़ती है मानो फूल जड़े हैं, मन्दी ध्वनि मृदङ्ग ऐसे बजते हैं मानो धीरे धीरे बादल

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
क्लृप्तच्छेदैः कनकनलिनैः कर्णविभ्रंशिभिश्च ॥
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः
नैशो मार्गस्सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥६९॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र यक्षाङ्गनानां
वासः कामादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ॥
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखगतान् प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥७०॥

नेत्रा नीताः सततगतिना ये विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां सजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ॥
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा यत्र जालै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥७१॥

६९ क्लृप्तच्छेदैः = रचितखण्डैः ॥
स्तनपरिसरः = उरोजोन्नतिः ॥
नैशो मार्गः = निशाभिसारिकाणां पन्थाः ॥

७१ नेत्रा = नायकेन ॥
सततगतिना = वायुना ।

कामिनि भामिनि सङ्ग लिये बहु भाँतिन यत्त बिहार करें नित
पीवत कल्पप्रसूतमधू सिगरे रतिरंग प्रसंग सरें नित ॥
६९ अलकावलि तें गिरि फूल परे गति आतुर माँहि मँदारन के
अरु कानन तें खिसले अवतंस बने कलधौतकल्हारन के।
कुच-उन्नति के गुन तें मुकता बिखरें गुन टूटत हारन के
इन तें वहाँ भोरहि जानि परै मग राति भए अभिसारन के॥
७० वहँ प्रीतम ढीठ भए रस के बस हाथ चलावत जोरी करें
गिर जच्छबधून के वस्त्र कछू खिच छोर छरान की डोरी परें।
दुति निर्मल रत्नप्रदीप धरे सोइ लोइसी आँखिन ओरी जरें
तिन ऊपर कुकुम फेंकि वृथा गडि लाजन भोरी सी गोरी मरें॥
७१ वहँ पौन के पेरे कितेकहु बादर तो उनहार के आवत हैं।
जल-बूँदन की बरषा करिकै अँगनान के चित्र मिटावत हैं
भयभीत से फेरि झरोखन ह्वै सिमिटे तन बाहर धावत हैं
कढ़िजान को बेगि धुआँ बनिके बड़े चातुर वेहू कहावत हैं॥

गरजता है उन्हीं महलों में यक्ष लोग सुन्दर स्त्रियों के साथ रतिरस का फल देनेवाली कल्पवृक्ष की मदिरा पीकर बिहार करते हैं॥

६९ जिन मार्गों होकर वहां रात में अभिसारिका नायिका गई होंगी वे दिन निकलते ही इन चिह्नों से पहचाने जायँगे कि वेग चलने में कहीं उनकी अलकों से छूटकर मन्दार के पुष्प गिरे हैं, कहीं कानों से कनककमल (कलधौतकल्हार) के करनफूल खिसले हैं, कहीं उरोजों की उँचाई से हार का डोरा टूट मोती बिखरे हैं॥

७० वहां कामकेलि में जच्छ लोग अपनी स्त्रियों के वस्त्रों पर हाथ डालते हैं जिससे नीवी-बन्ध (छरा अथवा नाड़ा) खुलकर कपड़े ढीले हो जाते हैं फिर मुग्धा स्त्रियां लाज की मारी सामने रक्खे हुए रत्नदीपकों पर चूर्ण की मुट्ठी फेंकती हैं परन्तु मणि के दीपक चूर्ण की मुट्ठी से कब बुझते हैं॥

७१ पवन के साथ अलका के महलों में बहुतेरे बादल आकर आँगनों के चित्र अपनी बूँदों से बिगाड़ते हैं फिर डर के से मारे तुरन्त छोटा शरीर बनाकर झरोखों के मार्ग भाग जाते हैं (जैसे छेंड़ी की राह कोई व्यभिचारी भागता है)॥

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्
अङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ॥
त्वत्संरोधापगमविशदैः प्रेरिताश्चन्द्रपादै-
र्व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥७२॥

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ॥
सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चटुलवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥७३॥

---

७२ व्यालुम्पन्ति = दूरीकुर्वन्ति ॥
चन्द्रकान्ता = मणिविशेषः ॥

७३ देवं = शिवम् ।
मन्मथचापोऽपि क्वचिदपि वितथीस्यात् न तु अलकाङ्गनानां विभ्रमाः ॥

७२ लटकें वहाँ सूत के जाल धरीं मणि इन्दुप्रिया छवि पावती हैं।
सित निर्घन चन्दमरीचिन कों अपने तन खेंचि मिलावतो हैं।
फिर उज्जल नीरन की बुँदियाँ हरवें हरवें बरसावती हैं।
गलबाहीं पिया तें छुटी ललना तिनकी रतिग्लानि मिटावती हैं॥

घनाक्षरी

७३ मीत किन्नरेश रहें नित्त ही महेश यहाँ
जानि यों रतेश चित्त शंका बिसरावे ना।
ताही डर बार बार अलकापुरी के माहिँ
भृङ्ग की प्रतिञ्चा खैंचि चाप पै चढ़ावे ना।
नागरि तियान नैन विभ्रम प्रताप पाय
कारज में वाके तऊ हानि होन पावे ना।
छूटत कटाक्ष बाँकी भौंह की कमानन तें
कामीरूप बेझो बिना-बेध्यो रहि जावे ना॥

---

७२ उन महलों में चन्द्रकान्तमणि सूत की जालियों में लटकती हैं और निर्मेघ चन्द्रमा की उज्ज्वल किरणों को खैंच कर जल टपकाती हैं जिनकी शीतलता से स्त्रियों की सुरत-ग्लानि मिटती है॥

७३ कामदेव जानता है कि कुवेर के सखा महादेव जी साक्षात् अलका में रहते हैं इसलिए उनके डर से वह अपना भौंरों की प्रतिंचावाला धनुष बहुधा उस पुरी में नहीं उठाता फिर भी जो काम उसके धनुष से होता है सो वहां की स्त्रियों के कटाक्षों से होता है क्योंकि उनके नैनबाणों से कोई कामी बच नहीं सकता (कहते हैं कि कामदेव का धनुष फूलों का, बाण कलियों के प्रतिंचा भौंरों की है)॥

तत्रागारं धनिपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।।
यस्योद्याने कृतकतनयः कान्तया वर्द्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ।।७४।।

वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना कमलमुकुलैः स्निग्धवैदूर्य्यनालैः ।।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टम्
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ।।७५।।

---

७४ स्तबकः = गुच्छः ।।

७५ व्यपगतशुचः = अकलुषजलत्वाद् वीतदुःखाः ।।

७४ यक्षराज भौनन तें उत्तर की ओर नैक
ताही अलका में मीत मन्दिर हमारो है।
दूर तें पिछान्यो जात चित्र चारु तोरन तें
द्वार पै सजे जो मानो चाप इन्द्रवारो है।
ताके बाग बीच एक नूतन मन्दार-वृक्ष
मेरी तीय पाल्यो मानि पुत्र सो दुलारो है।
गुच्छन के भार तें झुकी हैं डार डार आछी
आय जात हाथ फूल बीनत सुखारो है॥

७५ ताही भौन माहिं ताल सुन्दर बन्यो है एक
सीढ़ी लगी हैं जामें मरकत-शिलान की।
जातरूप कंज की कलीन तें रह्यो है छाय
अद्भुत सजी हैं नाल नीले उपलान की।
आय के बसे हैं जेते राजहंस वाके नीर
नेक ना रही है चित्त चिन्ता आपदान की।
तोहू कों बिलोकि वे न यातें सुधि लावें नेक
निकट रहे हू मानसर के पयान को॥

---

७४ हे मेघ उसी नगरी में कुवेर के महलों से उत्तर ओर थोड़ी दूर मेरा घर है उसके द्वार पर रङ्ग बिरङ्गे तोरन (चित्र) ऐसे खिँचे हैं मानो इन्द्रधनुष रक्खा है, आँगन के बगीचे में एक मन्दार का वृक्ष है जिसको मेरी स्त्री ने पुत्र के समान पाला है। वह कलियों से लदबदाकर ऐसा झुकता है कि उसके फूलों पर सहज ही हाथ पहुँचता है॥

७५ उसी बगीचे में पन्नों की सीढ़ियों का एक सुन्दर ताल है जो नीलम (नीलउपल) की डंडी के सुनहरे कमलों से छा रहा है। उसमें जिन हंसों ने आकर बास लिया है वे ऐसे सुखी हैं कि बरसात में भी मानसरोवर जाने की सुधि नहीं करते, यद्यपि मानसरोवर वहाँ से निकट भी है (बरसात में देस के नदी-नालों का पानी गँदला हो जाता है इस-लिये राजहंस दुःख पाकर देस से मानसरोवर को चले जाते हैं)॥

यस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनः प्रेक्षणीयः ॥
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥७६॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केशरस्तत्र कान्तः
प्रत्यासन्नः कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ॥
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥७७॥

७७ अशोकबकुलयोः स्त्रीपादताडनगण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः ॥

श्लोकः । स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ॥
मन्दारो नर्म्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ॥

७६ वाही ताल तीर पै हमारो बन्यो क्रीडाशैल
चोटी चारु जापै इन्द्रनील की सजाई है ।
जातरूप केलन की बारि चहुँ ओर लगी
नैनन सुहाती भाती शोभा सरसाई है ।
देखि देखि तोहि मीत संग चंचला के आज
तेरी उनहारि मोहि वाकी सुधि आई है ।
जानत हूँ प्यारो खरो मेरी बनिता को वह
आएं सुधि होति चित्त याते भीरुताई है ॥

७७ मंडप है माधवीलता को रमनीक तहाँ
सुन्दर कुरे की बारि ओर पास छाई है ।
नेरेही अशोक लाल सोहे लोल पल्लव लै
दूजी ओर केशर हू ठाढ़ो सुखदाई है ।
दोहद बहाने एक तेरी वा सखी को पाँव
बायों छूयवे कों आस मेरी सी लगाई है ।
प्यारी मुख आसव के लेन काज दूसरे में
ताही मिस मेरी भाँति लालसा समाई है ॥

---

७६ उसी ताल के तट पर हमारा क्रीड़ाशैल (मन बहलाने का पहाड़) है जिसके शिखर में बड़े बड़े नीलम लगे हैं और ओर पास सुनहरी केलों की सुन्दर बाड़ है । जब मैं तुझे बिजली चमकाता देखता हूँ तो ध्यान ऐसा बँधता है मानो वही पहाड़ सामने खड़ा है । वह मेरी प्यारी का प्यारा है इसलिये सुधि आने पर मेरा हृदय कँप जाता है ॥

७७ उस पहाड़ पर चमेली का एक झाड़ है जिसके चारों ओर कुरे की बाड़ लगी है और पास ही एक वृक्ष रक्त अशोक का है जिसके हिलते हुए पत्ते शोभायमान दीखते हैं और दूसरा वृक्ष बकुल का है । दोहद (फूलने की चाह) का मिस करके इनमें से पहला तो मेरी भांति मेरी प्यारी का बायाँ पाँव छूना चाहता है और दूसरा उसके मुख का रस लेने को मेरी ही सी आकांक्षा रखता है (लोक-प्रसिद्ध बात है कि जब तक सौभाग्यवती स्त्री का बायाँ पैर न लगे अशोक नहीं खिलता और जब तक ऐसी ही स्त्री अपने मुख का कुल्ला न डाले अथवा मुख से न छूए बकुल नहीं फूलता) ॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टिः
मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ॥
तालैः सिञ्जद्वलयसुभगैः कान्तया नर्त्तितो मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद् वः ॥७८॥

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथाः
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ॥
मन्दच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्य्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥७९॥

गत्वा सद्यः कलभतनुतां तत्परित्राणहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ॥
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्त्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥८०॥

---

७९ शङ्खपद्मौ = पद्मोऽस्त्रियां महापद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्दनन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥
अभिख्या = शोभा ॥

८० कलभः = करिशावकः ॥
निभां = समानाम् ॥

७८ उनही के बीच में बन्यो है खम्भ कञ्चन को
पटुली सु जापै धरी फटिकशिला की है।
मूल में जड़ी हैं कनी चोखी चारु पन्नन की
मोहे छवि आछी नए बाँस मंजुला की है।
आयके बिराजे तापै नीलकण्ठ तेरो मीत
बेला जब होति भानु खण्डितकला की है।
प्यार सों नचावे ताहि मेरी प्रानप्यारी नित
दै दै झनकीली ताल कंकन छला की है॥

दोहा

७९ इन चिह्नन पहचानियो मेरो बगर सुजान
शंख पद्म द्वारें लिखे करि तिनहू पै ध्यान॥
अब तौ मो बिन होयगो वह घर शोभाहीन
अस्त भयें जिमि भानु के बारिजबन छबिछीन॥
८० गज शिशु सम लघु बनि तुरत मम प्यारो हित लाय
क्रीड़ागिरि पै बैठियो जो मैं दियो बताय॥
भवन बीच चपला चमक मन्दी कीजो मीत
लसति पाँति जुगनू मनो अचला होइ न भीत॥

---

७८ उन वृक्षों के मध्य में एक सोने का खम्भ है जिस पर बिल्लौर की चौकी रक्खी है और जड़ में पन्ने जड़े हैं माना नये हरे बाँस लगे हैं। उसी चौकी पर साँझ के समय तेरा सखा मोर आकर बैठता है और मेरी स्त्री उसे कंकन बजती हुई ताल देकर नचाती है॥

७९ इन चिह्नों से तू मेरा घर जान लीजो और दूसरा चिह्न यह है कि द्वार पर शङ्ख और पद्मनिधियों के रूप लिखे हैं। मेरे बिना वह घर शोभाहीन होगा जैसे सूरज के बिना कमल का ताल॥

८० जो तू बड़ा रूप धर के जायगा तो मेरी प्यारी डरेगी। इसलिये हाथी के बच्चे के समान छोटा बन कर उस क्रीड़ाशैल पर जिसका मैं वर्णन

तन्वी श्यामा शिखरदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ।।८१।।

तां जानीयाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ।।८२।।

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियायाः
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।।
हस्ते न्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वात्
इन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्त्ति ।।८३।।

८१ शिखरः = दाडिमबीजसदृशरक्तमणिविशेषः ।।

८२ परिमितकथाम् = मितभाषिणीम् ।।

८३ उच्छूननेत्रम् = सशोथनयनम् ।।

८१ बिम्बाधर दाडिमदशन निम्ननाभि कृशगात
बसति तहाँ मृगलोचनी युवति छीनकटि तात ॥
श्रोणिभार अलसानगति झुकति कछुक कुचभार
मानहु ललना-सृष्टि में मुख्य रची करतार ॥

८२ ताहि सजन घन जानियो मेरो आधो जीउ
रहति अकेली मो बिना चकई ज्यों बिन पीउ ॥
मितभाषिनि उत्कण्ठिता बिरह कठिन दिन जात
शीत हनी जिमि कमलिनी औरहि रूप दिखात ॥

८३ रोइ रोइ सूजे सखा वा प्यारी के नैन
ताती स्वासन तें रह्यो वह रँग होठन पै न ॥
खुले बार कर पै धर्यो आनन कछुक लखात
ज्यों घनघेर्‍यो चंद्रमा छवि मलीन दिखरात ॥

कर चुका हूँ बैठियो और बिजली भी ऐसी थोड़ी चमकाइयो जैसी जुगुनुओं की पांति होती है ॥

८१ उसी घर में मेरी स्त्री मिलेगी जिसके श्रोठ बिम्बाफल से, दाँत अनार के दाने से, नाभि गहरी, शरीर दुबला, आंख चकित हरिनी की सी और कमर पतली है। वह नितम्बों के बोझ से चलने में कुछ अलसाती है और कुचों के बोझ से कुछ झुकी सी रहती है। निदान ऐसी है मानो स्त्रियों की सृष्टि में विधाता ने सबसे उत्तम उसी को बनाया है ॥

८२ उसी को तू मेरी अर्धाङ्गिनी जानियो। मेरे बिना वह ऐसे रहती होगी जैसे चकवे के बिना अकेली चकई और बिरह के इन कठिन दिनों में वह थोड़ा बोलनेवाली बहुत दुःखी होगी जैसे शीत की मारी कमलिनी ॥

८३ रोते रोते उसकी आंखें सूज गई होंगी और तत्ती स्वास लेते लेते होठों का रंग फीका पड़ गया होगा, खुले बालों में हाथ पै रक्खा हुआ उसका मुख ऐसा छबिहीन दीखता होगा जैसे उनमन में मलिन चन्द्रमा ॥

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ॥
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्त्तुः स्मरसि निभृते त्वं हि तस्य प्रियेति ॥८४॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ॥
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥८५॥

शेषान् मासान् विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीमुक्तपुष्पैः ॥
संयोगं वा हृदयनिहितारम्भमासादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहे ह्यङ्गनानां विनोदाः ॥८६॥

---

८४ पुरा = सद्यः ॥
बलिव्याकुला = देवताराधनेषु तत्परा ।,
निभृते = हे एकाकिनि, हे एकान्तवासिनि ॥

८५ मद्गोत्राङ्कम् = मम कुलचिह्नितम् ॥
स्वयमपि कृताम् = विस्मरणानर्हामपि ॥

८६ देहलीमुक्तपुष्पैः = प्रेषितकुशलार्थं मासे मासे देहल्यां समर्पितानि यानि पुष्पाणि तैः ॥

सोरठा

८४ धरणि गिरेगी मित्र बलि देती वह देखि तुहि
कै लिखती मम चित्र बिरह कृशित अनुमान करि ॥
कै कहुँ पूछति होइ पिँजरा बैठी सारिकहि
कबहू आवति तोहि सुधि प्यारी वा नाह की ॥

८५ कै धरि बैठी बीन मलिनबसन जंघान पै
गावन काज प्रवीन अङ्कित पद मम गोतकुल ॥
अँसुवन भिजई रोइ कै बीना कों पोंछती
कैधों भूलति होइ फिर फिर सीखी तान हू ॥

८६ कै मन करन प्रतीत रहे महीना अवधि के
गिनि गिनि धरती मीत सुमन देहरी के चढ़े ॥
कै साधति संजोग मम आगम अनुमान करि
येही नारि-नियोग होत नाह के विरह में ॥

---

८४ हे मेघ वह तुझे देखते ही मेरी ओर से निरास होकर गिर पड़ेगी। चाहे उस समय मेरी कुशलता के लिये काकबलि पूजन करती हो, चाहे विरह की पीड़ा में मेरा दुबलापन अनुमान करके मेरा ही चित्र बनाती हो, चाहे पिँजरे में बैठी हुई मैना से पूछती हो कि तुझे भी कभी प्यारे नाह की सुधि आती है ॥

८५ चाहे वियोग की दशा में मैले वस्त्र पहने हुए बीन जाँघ पर रख कर मेरे कुल के गीत गाने बैठी हो और आंसुओं से भीगी बीना को पोंछती हो, चाहे भली भांति अभ्यास की हुई मूर्छना को भी बार बार भूलती हो ॥

८६ चाहे शाप की अवधि के रहे हुए महीने निश्चय करने के लिये धरती पर रख रख कर देहली के चढ़े हुए फूल गिनती हो (परदेशी की कुशल-निमित्त महीने महीने देहली पर फूल चढ़ाये जाते हैं), चाहे अपने मन ही मन मुझे घर आया जान संजोग के उपचार करती हो क्योंकि पति के वियोग में स्त्री बहुधा ये ही धन्धे करती रहती हैं ॥

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्व्विनोदां सखीं ते ॥
मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सन्नवातायनस्थः ॥८७॥

आधिक्षामां विरहशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ॥
नीता रात्रिः क्षणमिव मया सार्द्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहजनितैरश्रुभिर्यापयन्तीम ॥८८॥

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ॥
मत्संयोगः क्षणमपि भवेत् स्वप्नजोऽपीति निद्राम्
आकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम ॥८९॥

---

८७ मत्सन्देशैः सुखयितुमलम् = मम वार्ताभिस्तामानन्दयितुं समर्थः ॥

८९ शुद्धस्नानात् = तैलादिरहितस्नानात् ॥

चौपाई

८७ लगी रहति इन कामन प्यारी। दिन विरहादुख होत न भारी॥
डरों अधिक रातिन दुख होई। करन काज जब काज न कोई॥
तू मम दूत तासु हितकारी। रहियो बैठि अर्धनिशि बारी॥
लखियो नारि पतिव्रत करती। बिगतनींद शय्या करि धरती॥
८८ चिन्ताबिथित परी तन छीना। एक करोट सेज पतिहीना॥
जिमि पूरब दिशि देत दिखाई। कलामात्र निकस्यो शशि आई॥
छिन समान बीततिहीं रतियाँ। मो सँग करत केलि रसबतियाँ॥
रोइ रोइ अब तिनहिं बितावति। बिरहतप्त आँसू बरसावति॥
८९ ताती स्वास भई तियमुख की। दायक मृदु होठन अति दुख की॥
फूँकि फूँकि तिनमों सरकावति। रूखी अलक कपोलन धावति॥
चाहति तनक नींद झुकि आवे। मति सपने अपनो पति पावे॥
पै अँसुवा नैनन भरि लेहीं। लगन पलक छिन हू नहिं देहीं॥

८७ दिन भर तो इन कामों में लगी रहने से उसे वियोग की बिथा बहुत न व्यापती होगी परन्तु मुझे डर है कि रात में जब कोई काम नहीं रहता वह अति दुःख पाती होगी। तू मेरा सँदेसा पहुँचा कर उसे प्रसन्न करेगा, परन्तु आधी रात के समय खिड़की (बारी) में बैठ कर देखियो वह किस भाँति नींद त्याग भूशय्या पर पड़ी हुई पतिव्रत साधती है॥
८८ विरह की चिन्ता में दुर्बल होकर धरती की सेज पर अकेली पड़ी हुई ऐसी दीखेगी मानों अँधेरे पाख की चौदस का चन्द्रमा निकला है और जो रात मेरे साथ रमण करने में छिन समान बीत जाती थी तिन्हें अब रो रो कर तत्ते आँसू गिराती हुई काटती होगी॥
८९ लम्बी और तत्ती स्वास लेते लेते नए पल्लव समान उसके होठ सूज गए होंगे। उन्हीं स्वासों से मुख पर पड़ती हुई रूखी अलकों को बार बार हटाती होगी और मुझे सपने में देखने के लिये चाहती होगी कि पल भर भी नींद आ जाय परन्तु आँसू छिन मात्र भी सोने न देते होंगे॥

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा या मयोद्वेष्टनीया ॥
स्पर्शाक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥९०॥

पादानिन्दोरमृतशिशिरान् जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्व्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव ॥
चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥९१॥

सा सन्न्यस्ताभरणमबला कोमलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम ॥
त्वामप्यस्रं जललवमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्व्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥९२॥

---

९० दाम हित्वा = मालां त्यक्त्वा ॥

९१ स्थलकमलिनी = भूपद्मिनी न तु नीरकमलिनी ॥

९० विरहा प्रथम दिवस मृगनैनी। बिन माला बाँधी जो बैनी॥
मेरे हि हाथन खोलन जोगू। शाप अन्त जब रहै न सोगू॥
भई कठोर गई न सँवारी। परति कपोलन पै दुखकारी॥
सरकावत फिर फिर अँगुरिन तें। नख न बने जिनके बहु दिन तें॥
९१ शीतल अमृत किरनि हिमकर की। परति आइ झझरिन बिच घर की॥
पूर्वप्रीति हित तिहिं संग धावत। तुरत नैन पाछे हटि आवत॥
सजल पलक तिन ऊपर लावति। बस बयोग अतिशय दुख पावति॥
स्वन सोवति जागत सी स्वन में। भूमिकमलिनी जिमि उनमन में॥

दोहा

९२ सेज परे कोमल स्वरं बिन आभूषण गात।
राखति अबला होइगी परी बिकल बिलखात॥
तेरेहू आँसू सखा देगी अवश बहाय।
सरस हृदय जन होत हैं बहुधा मृदुल स्वभाय॥

९० वियोग के पहले दिन जो बिना माला की बेनी बाँधी थी और जो शाप के अन्त पै मेरे ही हाथों से खुलेगी वह बेनी तब से शुद्ध नहीं की गई है, इसलिये कड़ी होगई होगी और कपोलों पर गिर कर दुःख देती होगी, उसे प्यारी अपनी अँगुलियों से जिनके नुह बढ़ रहे हैं बार बार सरकाती होगी॥

९१ संयोग समय की प्रीति मान कर उसके दृग पहले तो झरोखों में पड़ी हुई चन्द्रकिरणों की ओर दौड़ते होंगे फिर वियोग के दुःख में लौट आते होंगे और प्यारी उनको अपने सजल पलकों से ढांकती हुई कुछ सोती कुछ जागती ऐसी दीखती होगी जैसे उनमन में स्थलकमलिनी॥

९२ अपने कोमल शरीर को जिसके आभूषण उतार डाले हैं वह बड़े दुःख से धारण करती होगी, उसकी दशा देख कर तू भी रो देगा क्योंकि तू सरस-हृदय है (अर्थात् तुझमें जल भरा है) और सरस-हृदय पुरुष बहुधा करुणामय होते हैं॥

जाने सख्यास्तव मयि मनःसम्भृतस्नेहमस्मात्
इत्थम्भूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ॥
वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत ॥९३॥

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ॥
त्वय्यासन्ने नयनमुपरि स्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाकुलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥९४॥

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरविरचितं त्याजितो दैवगत्या ॥
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः कनककदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम ॥९५॥

९३ सुभगम्मन्यभावः = आत्मनः सुभगमानित्वम् ॥

९४ नयनम् = वाममिति शेषः ॥
वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः ।
दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलङ्करणेऽपि च ॥
श्रीतुलाम् = श्रीसादृश्यम् ॥

९३ जानतु हूँ मोमें लगी वाके मन की प्रीति।
यातें प्रथम वियोग में ऐसी करतु प्रतीति ॥
अपन बड़ाई करि कछू मैं न बजावतु गाल।
बेगि तुहू लखि लेहिगो मेरो कह्यो हवाल ॥

९४ बिन अञ्जन सूनो भयो अलकन रोकी सैन।
बिन मदिरा भूल्यो सबै भ्रूविलास सुखदैन ॥
दृग बाँयो मृगनयनि को हलिहै पहुँचत तोंहि।
मीन झकोरयो जलज जिमि शोभा भासति मोहि ॥

९५ वाम उरू वा वाम की मम नख-अंक-विहीन।
नित की मुक्ताकिंकिनी विधिवशात् तज दीन ॥
सहरावन के जोग वह मेरे हाथन मीत।
कंचन-कदलीखम्भ लों फरकेगी रँगपीत ॥

९३ मुझे निश्चय है कि उसका मन मुझमें स्नेह रखता है, इसीलिये मैं जानता हूँ कि उसकी दशा ऐसी होगी जैसी मैंने कही है। तू यह मत समझ कि अपने को सुभग मान कर मैं अपनी बड़ाई करता हूँ, मैंने जो कुछ कहा है तू आप ही थोड़े काल में देख लेगा ॥

९४ अञ्जन बिना नेत्र सूने होंगे, कपोलों पर बार बार अलक पड़ने से तिरछा देखना छुट गया होगा, मदिरा त्यागने से भौंहों का चमत्कार जाता रहा होगा। जब तू निकट पहुँचेगा तो उसका बायां नेत्र अच्छा सगुन दिखलाने को फड़केगा। उस समय ऐसी शोभा होगी मानो कमल को मछली ने हिलाया है ॥

९५ उसकी बाईं जाँघ भी जिस पर मेरे नुह के चिह्न मिट गए होंगे और बहुत दिनों की पहनी हुई तागड़ी दैवयोग से उतारी गई होगी और जिसको मैं अपने हाथों से सहलाता था ऐसे फड़केगी मानो सोने का वा केले का खम्भ हिलता है ॥

तस्मिन् काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्यात्
तत्रासीनः स्तनितविमुखो याममात्रं सहेथाः ॥
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्
सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थिगाढोपगूढम् ॥९६॥

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ॥
विद्युत्कम्पस्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरस्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥९७॥

'भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
'तत्सन्देशान्मनसि निहितादागतं त्वत्समीपम् ॥
'यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
'मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि' ॥९८॥

---

९७ सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् = मालतीनां नूतनमुकुलैः सह ॥

९६ ता छिन यदि सोवति मिले सुखनिद्रा वह बाल ।
मौन गहे बैठ्यो तहाँ तू रहियो कछु काल ॥
मेरे गलबाहीं दिये मति सपने में होइ ।
गरज सुनत तेरी जलद सो सुख देइ न खोइ ॥

९७ फिर जल शीतल पवन करि दीजो वाहि जगाय ।
मृदुल मालती कलिन सँग प्रफुलित-चित ह्वैजाय ॥
चमकत बारी माँहि तुहि लखिहै दीठि उठाय ।
तब तू बातें मन्दधुनि यों कहियो समुझाय ॥

शिखरिणी

९८ 'सखा तेरे पी को जलद प्रिय मैं हूँ पतिवती ।
'सँदेसा लै वाको तव निकट आयो सुनि सखी
'चले मेरी मन्दी धुनि सुनि बिदेसी तुरत ही ।
'करें बाञ्छा खोलें पहुँचि घर बेनी तियन की ॥

---

९६ यदि वह सोती मिले तो तू थोड़ी बेर चुपचाप बैठा रहियो, कहीं ऐसा न हो कि वह तेरे गरजने से जग पड़े और सपने में जो मुझसे मिलाप हुआ हो उसका सुख खो दे ॥

९७ फिर प्रातःकाल जब तू ठंढी पवन चलाकर चमेली की कलियों को खिलावे उसे भी जगा कर प्रफुल्लित-चित्त कीजियो, तुझे बिजली सहित खिड़की में बैठा देख कर वह निश्चल नेत्रों से तेरी ओर निहारेगी तब तू उससे मन्दी ध्वनि गरज कर यों कहियो ॥

९८ 'हे सौभाग्यवती मैं तेरे पति का मित्र बादल हूँ । उसका सँदेसा तेरे पास लाया हूँ । मेरी गरज में यह गुण है कि परदेसियों को तुरन्त अपने अपने घर जाने का चाव दिलाती है और उनके मन में चाह उठाती है कि घर पहुँच कर अपनी अपनी स्त्री की बेनी खोलें ॥

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैव ॥
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः ॥९९॥

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्त्तुं
ब्रूया एवं 'तव सहचरो रामगिर्य्याश्रमस्थः ॥
'अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तां
'भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्' ॥१००॥

९९ सम्भाव्य = सत्कृत्य ॥

१०० क्षयिषु करणेषु = नश्यमानेषु शरीरेषु ॥
यतांस्यपि महाप्रलये विनश्यन्तीति भावः ॥

चौपाई

९९ इतनो कहत तोहि मम प्यारी । जिमि हनुमत को जनकदुलारी ॥
सीस उठाय निरखि घन लैहै । प्रफुलित चित ह्वै आदर दैहै ॥
सुनिहै तिहिं बिधि कान लगाई । तेरे बचन सुभग सुखदाई ॥
सुहृद हाथ तिय पियसुधि पावति । सो मिलाप तें कछु घटि भावति ॥

१०० मम बचनन निज बचन मिलाई । यों वासों कहियो समुझाई ॥
'क्षेम सहित भरता तिय तेरो । करत रामगिरि माहिं बसेरो ॥
'पूछत है तेरी कुशलाता । कहि बिरहिनि अपनी तू बाता ॥
'प्रानी सबहि काल के भोगू । प्रथम कुशल ही पूछन जोगू' ॥

---

९९ जब तेरा ऐसा वचन सुनेगी तो वह सिर उठा कर तुझे देखेगी जैसे राम के दूत हनुमान को सीता जी ने देखा था और मन में वैसा ही आदर भी देगी और वैसा ही ध्यान लगा कर तेरा कहना सुनेगी । क्योंकि स्त्री को जो आनन्द पति के मिलाप से होता है उससे कुछ ही घट उसका सँदेसा किसी मित्र के हाथों पाने से भी होता है ॥

१०० फिर मेरे वचनों को अपने वचनों से बनाकर उससे यों कहियो 'हे युवती तेरा पति रामगिरि पर्वत पर कुशल से रहता है और तेरी कुशल पूछता है । संसार में जितने देहधारी हैं काल सबके सिर पर है इसलिये पहले कुशल पूछना ही योग्य है' ॥

'अङ्गेनाङ्गं सुतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
'सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ॥
'दीर्घोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्त्ती
'सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥१०१॥

'शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
'कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥
'सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्यः
'त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह' ॥१०२॥

---

१०२ इदम् = वक्ष्यमाणम् ।

घनाक्षरी

१०१ 'कीनो बिधि बैर रोकि दीनो पन्थ आवन कौ
'दूर पै बसायो जाय केतो पछतायो है ॥
'चित्त की उमङ्ग तेरे अङ्गन मिलावे अङ्ग
'दूबरी तुहू तौ वह दूबर सवायो है ॥
'बिरहा तपाई देह दीरघ तू लेति स्वाँस
'दोऊ इन बातन में तोतें अधिकायो है
'तेरे उत्कण्ठ गात नीर जात नैनन तें
'बाढ़ी अभिलाषा वह आँसू झर लायो है' ॥

छप्पय

१०२ 'प्रगट कहन हू जोग बात सखियन के आगे ॥
'तो मुख परसन लोभ कहतु हो कानन लागे ॥
'पर्‍यो दूरि अब जाय दृष्टि जहँ पहुँचि न पावति ॥
'श्रवन सुनन गति काम जहाँ तनकहु नहिँ आवति ॥
'स्वामि शाप-बस पाय के उत्कण्ठित निस दिन रहत ॥
'ताहि सुनावन बचन ये रचि रचि मो मुख तें कहत' ॥

---

१०१ 'विधाता ने बैर करके तेरे पति को परदेश का वास दिया है और घर आने 'का मार्ग रोक दिया है। मन की उमंग में वह अपने अंगों को तेरे अंगों 'से मिलाता है। तू दुबली है वह तुझसे भी अधिक दुबला है, तू बिरह 'की ताप में लम्बी और तत्ती स्वांस लेती है वह तुझसे भी अधिक लंबी 'और तत्ती स्वांस लेता है। तू उत्कण्ठितगात है। उसमें तुझसे अधिक 'उत्कण्ठिता है, तेरे आंसू गिरते हैं उसके आंसुओं की झड़ी लगी है' ॥

१०२ 'तेरे कपोल चूमने के लालच वह सखियों के सामने कहने की बात भी 'तेरे कानों में कहता था। अब इतना दूर पड़ा है कि न वहां दीठि 'पहुँचती है न कानों की गति है। तेरे सोच में उदास रहता है और तुझे 'सुनाने को ये पद बना कर उसने मुझे दिये हैं' ॥

" श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षिते दृष्टिपातान्
" गण्डच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ॥
" उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
" हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति" ॥१०३॥

" त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्
" आत्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम् ॥
" अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
" क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः" ॥१०४॥

" धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
" दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चबाणः क्षिणोति ॥
" घर्मान्तेऽस्मिन् विगणय कथं वासराणि व्रजेयुः
" दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्य्यातपानि" ॥१०५॥

१०३ श्यामा = प्रियङ्गुलता ॥

१०४ कृतान्तः = दैवम् ॥

१०५ घर्मान्ते = घर्म्मावसाने ॥

दिक्संसक्तःप्रविततघनव्यस्तसूर्य्यातपानि = दिक्षु संलग्ना ये मेघा व्यस्तैस्तै-
र्वारितातपानि वासराणि ॥

शिखरिणी

१०३ "मिले भामा तेरो सुभग तन श्यामा लतन में ।
"मुखाभा चन्दा में चकित हरिणी में दृग मिलें ।
"चलोर्मी में भौंहें चिकुर बरही की पुछन में ।
"न पै हाँ काहू में मुहि सकल तो आकृति मिले" ॥

१०४ "शिला पै गेरू कुपित ललना तोहि लिखि के ।
"धर्यो जौलों चाहूँ तन अपन तेरे पगन में ।
"चलें आँसू तौलों दृगनमग रोकें उमगि के ।
"नहीं धाता घाती चहतु हम याहू बिधि मिलें" ॥

१०५ "पर्यो हूँ मैं तेरे सुखद मुख तें दूर युवती ।
"खरो छेदे मेरे कृशित तन हूँ को रतिपती ।
"कटें कैसे प्यारी दिवस अब वर्षा ऋतु लगी ।
"मिटी भानुज्ज्वाला उमड़ि घनमाला नभ चढ़ी" ॥

---

१०३ "हे प्यारी तेरे कोमल शरीर की शोभा प्रियंगुलताओं में मिलती है, मुख "की कान्ति चन्द्रमा में, आँखों की चितवन चकित हरिणियों में, भौंहों की "मरोड़ नदी की चंचल तरंगों में, केशों की छवि मोरपुच्छ में, परन्तु हाय "तेरे सब अंगों की मूरत कहीं नहीं मिलती" ॥

१०४ "तुझ मानवती का चित्र पत्थर पर गेरू से लिख कर जब तक मैं अपने को "तेरे चरणों में रखना चाहता हूँ तब तक आंखों में आँसू भर आते हैं "और दीठ रुक जाती है । इससे जान पड़ा कि हमारे चित्र मिलाप को भी "विधाता नहीं सह सकता" ॥

१०५ "मैं तेरे सुगन्धित मुख से दूर हूँ फिर भी कामदेव मेरे दुबले शरीर को अपने "बाणों से छेदता है । अब वर्षा ऋतु लगी है, बादल उमड़े हैं, धूप मन्दी "होगई है, प्यारी ये दिन कैसे कटेंगे" ॥

"मामाकाशप्रणिहितभुज निर्दयाश्लेषहेतोः
"लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ॥
"पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
"मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति" ॥१०६॥

"भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
"ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ॥
"आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
"पूर्व्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति" ॥१०७॥

"संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
"सर्व्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ॥
"इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्ल्लभप्रार्थनं मे
"गाढोष्णाभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः" ॥१०८॥

१०६ स्थलीदेवता = वनदेवता ॥

तरुकिसलयेषु = वृक्षपत्रेषु ॥

यथा—महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि ।

देशभ्रंशो महाःदुखं मरणञ्च भवेद् ध्रुवम् ॥

१०६ "जु तू प्यारी मोकों मिलति कहुँ भावी स्वपन में।
"भुजा ऊँची दोऊ करि चहतु लागूँ तव गर।
"दशा ऐसी मेरी निरखि बनदेवा दृग भरें।
"बड़े डारें आँसू पतन पर मोती जिमि झरें"॥

दोहा

१०७ "दक्खिन मुख आवति चली मिलि तुसार सँग ब्यारि।
"देवदारुपुट तोरती तिहिँरस सोंधो सारि॥
"सो अपने भरि अङ्क मैं या हित लेतु लगाय।
"नागरि तो तन परसि मति मो तन परसे आय"॥

१०८ "चाहतु भारी रैन हू छिन समान कटि जायँ।
"दिवस भोर तें साँझ लों बिन संताप नसायँ॥
"करि करि दुलभ आस ये मो मन भयो बिहाल।
"तेरे कठिन बियोग में सुनि मृगनैनी बाल"॥

---

१०६ "जो भाग्य से कभी तू मुझे स्वप्न में मिल जाती है तो तुझे कंठ लगाने को "मैं बाँह पसारता हूँ उस समय मेरी दीनदशा देख बनदेवताओं को ऐसी "दया आती है कि वे वृक्षों के पत्तों पर बड़े बड़े आंसू गिराते हैं (पत्तों पर "इसलिये कि पृथ्वी पर देवता वा महात्मा का आंसू गिरने से प्रजा को "दुःख उपजता है)"॥

१०७ "उत्तर से जो ठंढी पवन देवदारु की कोंपलें तोड़ती और उनके दूध की "सुगन्धि लेती हुई आती है उसे मैं अपने अंक में भरता हूँ क्योंकि "आसा है कि कदाचित् तेरे ही शरीर को छूकर आई हो"॥

१०८ "तेरे वियोग में मेरा मन ऐसा दीन हो गया है कि दुर्लभ बातों की भी "प्रार्थना करता है, अर्थात् चाहता है किसी जतन से रात पल बराबर हो "जाय और दिन सबेरे से सांझ तक किसी समय दुःखदाई न हो"॥

"नन्वात्मानं बहुविगणयन्नात्मना नावलम्बे
"तत् कल्याणि त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम् ॥
"कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकांततो वा
"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" ॥१०९॥

"शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
"मासानेतान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥
"पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
"निर्वेक्ष्याव: परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु" ॥११०॥

"भूयश्चापि त्वमसि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
"निद्रां गत्वा किमपि रुदती सत्वरं विप्रबुद्धा ॥
"सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
"दृष्टस्स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति" ॥१११॥

---

१०९ बहुविगणयन् = शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामीत्यावर्त्तयन् ॥
अवलम्बे = धारयामि ॥

११० गुणितं = बहुलीकृतम् ॥
निर्वेक्ष्याव: = भोक्ष्यावहे ॥

सवैया

१०९ "मैं अपनो तन राखि रह्यो धरि के अभिलाष हिये बिच भारी।
"धीरज तूहु धरे किनि भामिनि जाइ मरी मति सोच की मारी।
"काहु पै दुःख सदाँ न रह्यो न रह्यो सुख काहु के नित्त अगारी।
"चक्रनिमी सम दोऊ फिरें तर ऊपर आपनी आपनी बारी"॥

११० "मम शाप की औधि मिटै तब ही जब शेष की सेज पै जागें हरी।
"इन चार महीनन कों अब तू दृग मीचि बिताय दै भागि भरी।
"मिलिहैं फिर कातिकी रातिन में हम देखिहैं चाँदनी चारु खरी।
"बुझि जायगी हौंस सबै जिय की बिरहा दुख जो दिनदूनी करी"॥

१११ "और कहूँ सुन एक दिना हियरा लगि मेरे तू सोइ रही।
"आवत नींद न बेर भई जगि औचक रोइ उठी तब ही।
"पूछी जु मैं धन बारहिं बार तौ तैं मुसकाइ के ऐसें कही।
"देखति ही सपने छलिया तुमने एक सौत की बाँह गही"॥

४५

१०९ "हे प्यारी मैं तेरे मिलने के बड़े बड़े चाव करके अपने प्राण रख रहा हूँ।
"तू भी धीरज धर। दुःख सुख सदा किसी को एकसा नहीं रहता। ये तो
"रथ की नेमि की भांति हिरते फिरते रहते हैं"॥

११० "मेरे शाप की अवधि में चार महीने और रहे हैं। जब देवठान होगा हम
"फिर सुख से शरद की चांदनी रातों में मिलेंगे और जो मिलने की अभि-
"लाषा हमारे हृदयों में वियोग ने बहुत बढ़ा दी है वह पूरी होगी। इन
"महीनों को तू आंख मीच कर बिता दे"॥

१११ "एक दिन की सुधि मैं तुझे दिलाता हूँ कि तू मेरे गले लगकर सोती
"थी। अकस्मात् जग कर रोने लगी। मैंने बार बार पूछा कि क्यों रोई तैंने
"हँस कर उत्तर दिया कि हे छलिया सपने में तुझे किसी स्त्री से मिलते
"देखा था"॥

"एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः ॥
"स्नेहानाहुः किमपि विरहव्यापदस्ते ह्यभोग्यात्
"इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति" ॥११२॥

"कच्चित् सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
"प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि ॥
"निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
"प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव" ॥११३॥

आश्वास्यैनां प्रथमविरहादुग्रशोकां सखीं मे
शैलादस्मात् त्रिणयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ॥
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥११४॥

---

११२ कौलीनः = जनप्रवादः ॥ एतावता कालेन परासुर्नोचेदागच्छतीति भावः ॥

११३ प्रत्यादेशात् = अनङ्गीकारात् ॥
धीरतां = तूष्णीम्भावम् ।
प्रत्युक्तमिति = नीचो वदति न कुरुते न वदति सज्जनः करोत्येवेति भावः ॥

११२ "पाय पते इतने मृगलोचनि जानिलै जीवत है पति तेरो।
"लोग लुगाइन की चरचा सुनि तू विश्वास तजे मति मेरो।
"नेह की रीति बड़ेन कही कुम्हलात कछू जब मीत न नेरो।
"भोग बिना अभिलाष बढ़ावत चिह्न लखें बढ़ि जात घनेरो"॥

दोहा

११३ बन्धु काज मम तैं इतो स्वीकृत कियो कि नाँहि।
नटन शंक तव मौन तें नैक न मो मन माँहि॥
तू बिन बोलेहू बरसि मेटत चातक प्यास।
सज्जन जन उत्तर यही पुजवत याचक आस॥

चौपाई

११४ दै धीरज मेरी पतिनी कों। प्रथम विरह-व्याकुल सजनी कों॥
चलियो तुरत जलद वा गिरि तें। खोदी त्र्म्बक वृषभ शिखिरि तें॥
लाइ प्रिया की कछुक निसानी। अरु वा मुख की कुशल कहानी॥
मेरेहु प्रान राखियो ताता। भये मलिन जिमि कुन्द प्रभाता॥

---

११२ "हे प्यारी इन पत्तों से तू निश्चय रख कि मैं जीता हूँ और जो पार "पड़ोसी चरचा करें कि जीता होता तो अब तक आ जाता अथवा कुछ "सँदेसा भेजता तो उनकी बात पर तू विश्वास मत कीजो। नेह का स्वभाव "है कि वियोग में कुछ मलिन हो जाता है परन्तु फिर भी चाव को बढ़ाता "है और प्यारे का पता पाकर बहुत बढ़ जाता है"॥

११३ हे मेघ मेरे सँदेसे का पहुँचाना तैंने स्वीकार किया हो वा न किया हो, तेरे चुप रहने का कारण मैं यह नहीं समझता हूँ कि मेरी प्रार्थना तैंने अङ्गीकार नहीं की, क्योंकि तू तो बिना गरजे भी चातकों की प्यास बुझाता है और सज्जन पुरुष उत्तर दिये बिना ही याचकों की आसा पूरी कर देते हैं॥

११४ मेरी स्त्री को जो पहले ही बिरह की विथा में फँसी है मेरे सँदेसे से ढाढ़स देकर और कैलाश पर्वत से जिसकी शिखर को शिव जी का नांदिया अपने सींगों से खोदा करता है, उतर कर तू मेरे पास आना और उसकी कुछ निशानी लाना। जैसे मेरा सँदेसा पहुँचा कर उसके प्राण बचावेगा उसकी कुशल सुनाकर मेरे भी कुम्हलाते हुए प्राण बचा लीजो॥

एतत्कृत्वा प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ॥
इष्टान् देशान् विचर जलद प्रावृषा सम्भृतश्रीः
मा भूदेवं क्वचिदपि न ते विद्युता विप्रयोगः ॥११५॥

तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ॥
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्त्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥११६॥

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयस्संविधायास्तकोपः ॥
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥११७॥

इत्युत्तरमेघः ।

---

११५ प्रावृषा सम्भृतश्रीः = वर्षाभिरुपचितशोभा ॥

विद्युता = कलत्रेणेति शेषः ॥

११५ कै बिरही कै सखा सुमिरि के। दयादृष्टि मो ऊपर करिके॥
पूरन कीजो बिनती मोरी। सब बिधि उचित सुहृदजन केरी॥
चलियो फिर मन में जित आवे। पावस-सुखमा सङ्ग सुहावे॥
पलहु न बिज्जु बिरह होइ तोकों। जैसो भयो शापबस मोकों॥

दोहा

११६ जक्षवधू कुशलातहित धरि हिय मित्र उछाह।
कह्यो सँदेसा जाय यह दिव्य वचन जलवाह॥
पाइ कुशल भरतार की हरषी वह मन माहिं।
करि सज्जन सों बीनती को तुष्टयो जग नाहिं॥

शिखरिणी

११७ सुनी एती बातें धनपति जु भाषी जलद की।
दया जो में आई रिस मिटत ताही छिन भई।
मिलाये वे दोऊ बिपति हरिलीनी शपथ की।
सदाँ भोगो बाञ्छाफल हरपि यों आशिस दई॥

इति उत्तरमेघ।

---

११५ मुझे विरही जान कर अथवा अपना मित्र समझ कर दयासहित मेरा यह काम कर दीजो। यह मित्रों के करने ही योग्य है। इसको भुगता कर जहाँ जी चाहे वरषा से शोभा पाता हुआ फिरियो और जैसा वियोग मुझे अपनी स्त्री से हुआ है तुझे पल भर भी तेरी प्यारी बिजली से मत हो॥

११६ यक्षिणी के प्राण बचाने को मित्र काज के उत्साही बादल ने वह सँदेसा उसको देववाणी से सुनाया। पति की कुशल सुन कर वह भी प्रसन्न हुई। सज्जनों से किसकी प्रार्थना सफल नहीं हुई॥

११७ अलका में जब मेघ के कहे हुए इस सँदेसे की चरचा फैली और कुबेर के भी कान तक पहुँची तो उसके हृदय में करुणा आई, कोप दूर हो गया। फिर तुरन्त उसने शाप की अवधि मिटा कर यक्ष-यक्षिणी को मिलाया और असीस दी कि सदा मनवाञ्छित फल भोगते रहो॥

॥ इति शुभम्॥